‘ज्ञानपीठ’ और ‘साहित्य अकादमी’ पुरस्कार से सम्मानित लेखक

श्रीलाल शुक्ल

अज्ञातवास





अज्ञातवास

श्रीलाल शुक्ल

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

प्रथम संस्करण
सितम्बर, १९६१

मूल्य
दो रुपये पचास नये पैसे
(२·५०)

प्रकाशक :
राजपाल एण्ड सन्ज़
पो० बा० १०६४, दिल्ली

कार्यालय व प्रेस
जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली-३२

बिक्री-केन्द्र
कश्मीरी गेट, दिल्ली

युगान्तर प्रेस, दिल्ली में मुद्रित

प्रस्तावना

इस उपन्यास में रजनीकांत गांव के होकर भी वहां की आंतरिकता से अपरिचित रहे। कच्ची झोंपड़ियां और पक्के बंगले, तुलसी और क्रोटन—इनके अन्तर की तुच्छता में ही वे उलझे रहे। इनसे ऊपर उठकर जीवन के बृहत्तर परिवेश में वे अपने को नहीं पहचान सके।

ठीक इसके विपरीत श्रीमती गिरिजा शुक्ल के साथ हुआ। उन्होंने पहले कभी गांव न देखा था। शादी होने के बाद ही वे पहली बार एक गांव में आईं। तब बरसात शुरू हो गई थी और ग्राम्यगीतों और सौम्य कविताओं के सम्मिलित षड्यंत्र के बावजूद रास्तों और मकानों में सीलन, कीचड़, मच्छर, मलेरिया और सांप-बिच्छू का ही आकर्षण था। पर कीचड़ से लथपथ और मलेरिया से जर्जर गांव की संक्रामक आत्मा ने उन्हें अपनी ओर खींचा और दोनों ने एक-दूसरे को अपना लिया।

जीवन के प्रति एक शांत, सम्यक् दृष्टि का परिचय देते हुए बाहरी वातावरण से ऊपर उठकर उन्होंने वहां के मानवीय स्तर को आत्मसात् करने की कोशिश की। इस प्रकार उन्होंने यथार्थ के सहज और आंतरिक सौंदर्य का वरण किया।

पति होकर भी आज तक मैं उनकी इस प्रवृत्ति को छोटा बनाकर नहीं देख पाया।

विवाहित जीवन के उन प्रारम्भिक दिनों का स्मरण करते हुए अपनी यह कृति उन्हें ही अर्पित करता हूं।

—श्रीलाल शुक्ल

चित्र की ओर कुछ देर बराबर देखते रहने के बाद रजनीकान्त ने पूछा, "और इसका नाम क्या है ?"

राजेश्वर सरलता से हंसा, बोला, "नाम के ही मामले में मैं कमजोर पड़ता हूं। मेरे मन में कुछ बिम्ब उभरते हैं, उन्हींके सहारे चित्र बनता जाता है। चित्र बन जाता है, पर मैं नाम नहीं खोज पाता। नाम ढूंढ़ने के लिए चित्रकार नहीं, कवि होना पड़ता है।"

उन्होंने कहा, "क्या हर्ज है, थोड़ी देर के लिए कवि ही सही'''।"

राजेश्वर फिर वैसे ही हंसा। कहने लगा, "मैं कवि नहीं हो सकता, मेरे शब्द कमजोर हैं। तभी तो रंगों और रेखाओं का सहारा लिया है।"

रजनीकान्त के मन में आया, कुछ देर उससे शब्दों की कविता और रेखाओं की कविता की अभिन्नता पर बहस की जाए। पर उन्होंने अपनी इस इच्छा को दबा लिया।

हर साल इंजीनियरिंग कॉलिज से निकले हुए कुछ तेज विद्यार्थी उनकी मातहती में इंजीनियर होकर आते हैं। उस समय माहवारी तनख्वाह पानेवालों की उनमें परम्परागत विनम्रता नहीं होती। हर बात में वे अपनी राय देते हैं, हर बात पर बहस कर सकते हैं। उनको चुप करने के लिए रजनीकान्त ने एक गम्भीर मुस्कराहट का आविष्कार किया है, जिसके सहारे वे बिना कुछ कहे ही बहुत-से तर्कों का जवाब दे देते हैं। इस समय उसी मुस्कराहट को अपने चेहरे पर फैलाते हुए उन्होंने कहा, "फिर भी, चित्र का कुछ नाम तो रखा ही होगा।"

राजेश्वर ने कुछ हिचकते हुए कहा, "जी, कोई नाम रखना जरूरी ही हो तो इसे 'अज्ञातवास' कह सकते हैं। आपकी क्या राय है?" कहकर उसने प्रभा की ओर देखा।

प्रभा की निगाह भी चित्र पर ही लगी थी। कुछ सोचकर रजनीकान्त से बोली, "इससे अच्छा शीर्षक और हो ही क्या सकता है पापा?"

सामाजिक जीवन की वह नाटकीय मुस्कराहट उनके चेहरे पर धुंधली पड़ गई। बिना किसीको लक्ष्य किए, धीरे से प्रश्न-सा करते हुए बोले, "अज्ञातवास?"

जिस चित्र को लेकर ये बातें हो रही थीं उसमें कोई भारी विशेषता न थी। केवल गफ़नार पेड़ों का एक घना जंगल था।

वे पेड़ गहरे हरे थे और पीछे काले होते चले गए थे। सामने के दो-तीन पेड़ों के बीच छुटी हुई गोलाकार जगह में शाम की फैलती हुई कालिख पहले की लोहित आभाओं को घेरती चली आ रही थी। पर उसके पीछे छायाएं न थीं। छाया की जगह क्रम से काले पड़ते हुए घने पेड़ों का अनियमित विस्तार-भर था। और कुछ न था।

इस चित्र को देखते-देखते कुछ खो देने की, कुछ भूल जाने की, कहीं भटक जाने की सी उदासी उनके मन में फैल गई। जैसे वे क्लब में व्हिस्की पी रहे हों और बिलियर्ड खेल रहे हों, और पड़ोस के कमरे से कहकहे और नाच की धुनें कानों में आ रही हों, तभी उन्हें कोई बाहर बुलाकर ले आए, रोशनी, गर्मी, मस्ती और ठहाकों से दूर ले जाकर किसी वीरान और ठिठुरन-भरी सड़क पर अकेला छोड़ दे और वे हाथ में क्यू लिए हुए, आस्तीन की बांहें समेटे, समझ न सकें कि क्या हो रहा है।

उन्हें खुद नहीं मालूम कि वह चित्र देखकर उन्हें कैसा लगा। जैसे

किसीने बन्द कमरे के झरोखे से रात के पिछले पहर खुले स्वतंत्र आकाश में शुक्रतारा देखा हो, किसीने थके मन से जोड़-बाकी का हिसाब लगाते समय दूर से बहकर आती हुई किसी रागिनी के अधखुले स्वर सुने हों। जैसे दफ्तर की फाइलों से दबे हुए मन में बहुत दिन पहले सुनी हुई कविता की कोई विशृंखल पंक्ति अचानक ही कहीं से उभर आई हो! ऐसा ? शायद ऐसा नहीं। यह अनुभव कुछ दूसरी ही तरह का था।

राजेश्वर शहर से यहां तक अपनी पेंटिंग बेचने के लिए आया था। चित्र बनाने के पहले उसके मन में रंगों के चाहे जितने ही इन्द्रधनुष क्यों न खिचे हों, पर उसके खत्म होते ही उसने अनुभव किया कि उसकी जेब, और उसके साथ ही साथ उसका दिमाग खाली है। परिणाम यह हुआ कि जिसमें अपने चित्र का नामकरण तक करने की व्यावहारिकता न थी, उसे विवशत: अपने प्रशंसक रजनीकान्त की तलाश में उनकी कोठी पर जाना पड़ा। फिर पता लगाते-लगाते वह घोर देहात में नहर से लगे हुए इस डाकबंगले तक चला आया।

शाम होनेवाली थी। राजेश्वर ने कहा, "मुझे आज्ञा हो तो जाऊं। रात दस बजेवाली गाड़ी से वापस लौट जाऊंगा।"

उन्होंने एक चेक लिखकर उसके हाथ में दिया। बोले, "इसे अपने चित्र की कीमत मत समझना। मैं इसकी कोई कीमत नहीं दे सकता, यह इसी मजबूरी की सनद है।" कहकर उन्होंने हंसने की कोशिश की।

फिर प्रभा को बुलाकर कहा, "प्रभा बेटी, गंगाधर के लिए कार स्टेशन जा रही होगी, राजेश्वरजी उसीसे क्यों नहीं चले जाते ?"

राजेश्वर के चले जाने के बाद वे उस चित्र को बरामदे से उठाकर कमरे में ले आए। उसे एक कोने में, छोटी-सी मेज के ऊपर दीवाल के सहारे टिका दिया। फिर एक बड़ी आरामकुर्सी पर लेट गए। उसका शीर्षक बार-बार उनके मन की दीवालों से, बन्द कमरे में भटकनेवाली मधुमक्खी की तरह, टकराता रहा।

सोचते रहे :

आज कोई इन घने होते हुए जंगलों में खो गया है। आज यह जीवन दिशा खोकर भटक रहा है, निरुद्देश्य बीत रहा है।

पहले भी ऐसा ही था। पर तब वह इसी कारण किसी किशोरी-सा आकर्षक था। जिसे लगाव की उंगलियों ने छुआ नहीं, जिसके वर्तमान में कौतूहल है, भविष्य में अस्पष्ट मादकता है। तब प्रत्येक भाव इसे छेड़ने आता। इसे अपनाना चाहता। आकर्षक दिखने के लिए सिद्धान्त का चेहरा लगाकर आता। पर अब धीरे-धीरे वह भीड़ भी छंट रही है। दूर पड़ते हुए भावों को पकड़ने के लिए यह उद्देश्यहीनता पागल-सी दौड़ रही है। या, चुपचाप बैठकर अपने आपपर खीझ रही है, प्रौढ़ा अविवाहिता-सी।

इस कमरे की खिड़की खुली है और अगहन की हवा बहकर अन्दर आ रही है। पछुवा हवा। अलसी और मटर के नीले बैंगनी फूलों को छेड़ती हुई। बांसों के झुरमुट में सीटी-सी बजाती। मुरझाते कमल-वनों पर उसांस-सी छोड़ती। डाक्टर कहते हैं, इस हवा से बचो। मैं खिड़की बन्द करना चाहता हूं। पर उठना नहीं चाहता। किसीको पुकारना भी नहीं चाहता।

मैं यूं ही रहा हूं। बहुत कुछ करना चाहता हूं। करने में कोई बाधा नहीं, पर नहीं करता। वैसे जब कुछ कर लेता हूं तब सोचता हूं कि यही करना चाहता था। जो किया नहीं, उसके लिए सोचना चाहता

हूं कि उसे कभी चाहा नहीं। 'अपने कृतित्व की तुष्टि के लिए अतीत की अंधेरी गुफाओं से न जाने कितनी नगण्य, उपेक्षित कृतियां ढूंढकर लाता हूं, स्मृति की उपलब्धियां !

फिर भी कहीं कुछ चुभता-सा रहता है।

कभी-कभी जान पड़ता है, चारों ओर से फंस गया हूं। सामने उजाला था। उसे छोड़कर जहां आ गया हूं, वहां अंधेरा है, चारों ओर पेड़ों के घने झुरमुट हैं जो राह रोकते हैं, और अब सोचने की जगह भी नहीं। वहां भी काले जंगल हैं। सोचने की जो जगह पहले घेर चुका था, वे जंगल उसपर भी हमलावर हो रहे हैं। कुछ झाड़ियां-सी उग आई हैं। कंटीली घास पनप रही है।

सोचते-सोचते वे उद्विग्न हो गए। फिर और सोचने लगे। जैसे कभी-कभी अपने ही मांस में अपना नाखून गड़ाते रहने पर खाल की तीखी जलन में भी कुछ मिलता-सा है, जैसे कोई अपनी ही हथेली पर बेत-सा लगाता है···।

"पापा, आज शिकार नहीं होगा क्या? आपने कपड़े तक नहीं बदले?"

उनके मन में घने काले पेड़ों के झुरमुट एक धब्बा-सा बना रहे थे, जिनपर मिले-जुले, घने, अचल पत्ते थे। चिड़ियां नहीं थीं। बोले, "नहीं, आज मैं यहीं रहूंगा। गंगाधर ऐण्ड कम्पनी आनेवाली है। दो-एक घंटे में वे लोग आ जाएंगे।"

रेशमी, सुगन्धित, रूखे बालों के गुच्छे। पछुवा में उड़ते हुए। सुनहले मत्थे और एक आंख पर तैरते-से, एक उंगली से उन्हें बालों की असंख्यता में समेटते हुए उसने धीरे से दोहराया, "गंगाधर एऽऽण्ड कऽऽम्पनी।" हलकी

लिपस्टिक में खिले हुए होंठ। उनपर एक हलकी वक्रता-सी फैली।

शायद उन्होंने सुना नहीं। एक असभ्य-सी अंगड़ाई लेते हुए एक थकी-सी आवाज़ में बोले, "चिड़ियां मारते-मारते जी भर गया!"

इस आवाज़ में कुछ है। पापा की आवाज़ ऐसी नहीं है। उसके मन में आया। ढीले-ढाले गाउन में वे सोफे पर पड़े सिगार पी रहे थे। पी कहां रहे थे, वह ओठों में दबा हुआ था। न जाने कब बुझ गया था। वह आकर उनके पीछे खड़ी हो गई। कन्धे पर धीरे से हाथ रखकर बोली, "क्यों पापा? गंगाधर ऐण्ड कम्पनी के लिए भी दो-एक कार्जे न मारिएगा?" पर उन्होंने सिर हिलाया। उसी थकान के साथ कहा, "नहीं प्रभा, किसीके भी लिए नहीं!" कहकर वे संभलकर सोफे पर बैठ गए। पास की मेज़ से सिगार जलाने के लिए लाइटर उठा लिया।

तो, यह थकान कैसी है? जो दिन-भर के आराम के बाद, स्वस्थ शरीर की वेगवती दृढ़ता में भी नहीं बह पाती? उन्होंने लाइटर फिर वैसे ही मेज़ पर रख दिया है। सिगार बुझा हुआ है।

सामने आकर प्रभा ने लाइटर जलाया, वे मुस्कराए। धीरे-धीरे उन्होंने सिगार जलाया। धीरे से ही उसका धुआं होंठों के कोने से फूटकर बाहर निकल आया।

प्रभा उनके पास बैठ गई। गाउन की बांह पर हाथ फेरते हुए बोली, "क्या हुआ पापा?"

सामने एक बड़ी खिड़की थी। उनके पीछे साफ-सुथरा मखमली दूब का लॉन, फिर पतली सड़क, फिर चौड़ी रविशें। उसके बाद डाकबंगले की चहारदीवारी। गुड़हल की हरी-भरी, घनी, करीने से कटी हुई ऊंची हेज, उसके पार जो है वह दिखाई नहीं देता। कुछ दूर आगे बांसों के घने झाड़ों के पास धुएं की एक क्षीण रेखा पृथ्वी के समानान्तर फैली हुई। उस पार कोई गांव होगा।

वे देखते रहे। प्रभा का सवाल धीरे से पचाकर, कुछ रुककर, बोले, "कुछ भी तो नहीं हुआ, प्रभा बेटी।"

वे बेटी कह रहे हैं। उनके मन में कहीं कुछ कुरेदता है। तभी यह प्यार होठों पर उभर रहा है। वह स्नेह के आवेग में हंसी। बाईस वर्ष की युवती। ऐसी हंसी दस साल पहले तन-मन को ढके रहती थी। अब यह हंसी कभी-कभी ही आती है। किसी पुराने परिचय की बन्धुता में मन को समेटती हुई हंसती हुई बोली, "काजें झील में पड़ी हुई हैं। गंगाधर ऐण्ड कम्पनी आनेवाली है। कारतूसों के नये डिब्बे सबेरे ही आ चुके हैं, और आप गुमसुम बैठे हुए हैं? यह कुछ हुआ ही नहीं? बताते क्यों नहीं, पापा, बात क्या है?"

सहसा उनके मन में बात करते रहने की प्रबल इच्छा पैदा हुई। बोले, "बताऊं क्या बात है? तुम समझ लोगी न?"

वे खड़े हो गए। खिड़की के पास जाकर उन्होंने अपने शरीर को सीधा किया—लगभग अड़तालीस वर्ष की अवस्था का पुष्ट शरीर। गोरा रंग। आंखों पर मोटे फ्रेम का चश्मा। कभी आकर्षक, कभी डरावनी-सी लगनेवाली बड़ी आंखें चश्मे के अन्दर से और भी बड़ी दीख पड़ती हुई। कनपटियों में और कानों के ऊपर बाल सफेद होने लगे हैं, मत्थे पर दो-तीन शिकनें खिचती हैं, मिटती हैं। फिर भी लगता है, यौवन को इस आकार में बहुत कुछ मिल गया है। जेल में अपने किसी प्रियजन से मिलने आए हुए भावुक व्यक्ति-सा यौवन! समय हो जाने पर भी जाना नहीं चाहता!

प्रभा देखती रही। उनकी पीठ का बहुत-सा भाग, चेहरे के एक रेखावाले फ्रेम की झलक, वह देखती रही। सिगार का धुआं दो-तीन

लहरों में बहता हुआ आया। धीरे-धीरे गुंजलकों में ऊपर की ओर उठ गया।

उनकी आंखों के आगे असाढ़ की एक सांझ अपनी स्वर्णाभा में डूब-उतरा रही थी। लगभग अट्ठाईस साल पहले की शाम।

वे इंजीनियरिंग कालेज में प्रवेश पा चुके थे। दूसरे दिन उन्हें जाना था, नीचे मां उनके जाने की तैयारी में लगी थीं। वे छत पर एक किनारे खड़े गांव की पूर्वी सीमा की ओर देख रहे थे। खेत थे, खेतों के पास पलाश-वन था।

अचानक उन्हें एक खनक सुन पड़ी। चांदी, सोना, आकांक्षा, ऐश्वर्य, कविता—सबका मिला-जुला अस्फुट स्वर। उन्होंने पीछे मुड़कर देखा, जीने की आखिरी सीढ़ी पर दरवाजे की ओट खड़ी हुई रानी उन्हें हाथ के इशारे से बुला रही थी।

वे जाकर उसके पास खड़े हो गए। बड़े स्नेह से पूछा, "क्या बात है?"

उसने इन्हें देखा। फिर लजाकर दूसरी ओर देखने लगी। हंसी के बहाव को रोकते हुए बोली, "कुछ भी तो नहीं।"

अपनी हथेलियों में उसके चेहरे को दोनों ओर से घेरकर उन्होंने फिर पूछा, "क्या बात है रानी, बोलो न।"

लाज, और उसीके साथ भीतर न दब पानेवाले आवेग-उल्लास के कारण उसका चेहरा तमतमाया जा रहा था। उन्होंने उसके मुंह को अपने पास, अपने सामने खींच लिया था, फिर भी दो चंचल आंखें किसी असम्भव दिशा में भागकर छिपना चाहती थीं। धीरे से उन्होंने रानी को अपनी ओर समेटा। इस बार बिना किसी विरोध के वह और भी पास

आ गई। अपने सिर को रजनीकांत के कन्धे के सहारे टिकाकर, आंखें मूंदे एक क्षण चुपचाप खड़ी रही। वे उसकी उद्धत, उतप्त सांसें सुनते रहे। उसके मत्थे पर घिरे असंयत बालों को संवारते रहे।

फिर उसने आंखें खोलीं। पूछा, "यहां अकेले क्यों खड़े थे?"

उन्होंने कहा, "चलो, वहीं चलकर देखो, तब मालूम होगा, मैं वहां क्यों खड़ा था।"

बच्चों की तरह घबराहट से सिर हिलाकर वह बोली, "न, न! मैं वहां कैसे जा सकती हूं। दूर-दूर से लोग देखेंगे नहीं, मैं छत पर खड़ी हूं, क्या कहेंगे, बताओ?"

वे हंसने लगे। बनावटी सरलता के साथ पूछा, "क्या कहेंगे, बताओ न?"

रानी ने कहा, "मैं कुछ नहीं जानती। यहीं से बताओ, वहां खड़े होकर क्या देख रहे थे?"

रजनीकान्त पूर्व की ओर फैली हुई निर्बाध हरियाली को देखते रहे। फिर हाथ उठाकर इशारा करते हुए बोले, "वह देखो रानी, मैं यही देख रहा था।"

एक मचलती हुई आवारा शाम। पागल हवाएं। ऊंचे-ऊंचे पेड़ों की मजबूरी में बंधी, क्षितिज को पल्लवों से छूने के लिए चारों ओर उड़ती बेसब्र टहनियां। हाथ-पैर पटकती रूठी हुई लताएं। पूर्व के आकाश में एक-दूसरे को जोर-जोर से ठेलते हुए, बदमस्त, मटमैले बादल। शोरगुल और गरज। सहमकर भागती, छिपती हुई बिजलियां। गिरते हुए सूरज को नीचे ढकेलकर, काले मेघों के बन्धनों को तोड़कर, बेकाबू बढ़ती हुई, टीलों को चूमती, पेड़ों के गले लिपटती बेशर्म किरणें। ढलानों और कछारों, बागों और मैदानों में बेतकल्लुफी से लेटती हुई अस्थिर परछाइयां।

सब कुछ अनियन्त्रित, असंयत ।

कुछ ही क्षणों में इन रक्त-श्याम मेघों का मायालोक मिटनेवाला था। किरणें उसी तिमिर-लोक में वापस लौट जानेवाली थीं। पर अभी पूर्व का पलाश-वन साफ दिख रहा था। वर्षा के प्रथम आसार से धुली हुई, लहर लेती हुई हरियाली। यह वन कितनी दूर तक फैला चला गया है! इसके उस पार फिर घनी बागें मिलेंगी, खेत होंगे'''पर रजनीकान्त के घर की छत से यही लगता था कि उसके पार भी एक और वन होगा, कुछ और घना, कुछ और रहस्यमय। फैलती हुई छायाएं, मिटती हुई रक्तिम आभा, चमकती हुई हरियाली—इस सबका निस्सीम सघन विस्तार वे देखते रहे। बोले, "रानी, तुम देख रही हो न? मैं कल जा रहा हूं। मेरा यह हरा-भरा संसार कुछ दिनों के लिए पीछे छूट जाएगा।"

उन्हें लगा, रानी की निगाह उनके चेहरे पर गड़-सी गई है। शायद वह उनकी ओर उसी आग्रह से, आसन्न वियोग की उसी उत्कटता से देख रही थी, जिस तरह वे इस पलाश-वन को देखते रहे थे। फिर बड़े प्यार से, हलके व्यंग से, बोली, "हां, तुम्हारे पीछे छूटनेवाले तो यह ऊसर जंगल ही हैं। इन्हींके साथ तुम्हारा कोई और भी पीछे छूट रहा है, कभी यह भी सोचोगे?"

कुछ क्षणों के लिए उन्होंने अपने-आपको भुला दिया। अपनी इस नवपरिणीता पत्नी के दबे आवेग ने उनके उस पूरे आवेग को उभार दिया जिसे वे जान-बूझकर दिन-भर दबाते रहे थे। आषाढ़ की उस डूबती-उतराती शाम की निरंकुशता उनके मन को झकझोरने लगी। अपने को रानी के आगे पूरी तरह अर्पित करते हुए उन्होंने अस्पष्ट स्वरों में कहा, "रानी, तुम कुछ नहीं समझतीं। मेरा अपना संसार क्या है—तुम यह कुछ नहीं समझतीं।"

आज सब कुछ बदल चुका है। केवल उन वनों का लैंडस्केप सामने है।

पर इस लैंडस्केप में उजाले पर काले जंगलों का आक्रमण हो रहा है। जंगल में घास के मैदान हैं। ऊंचे पेड़ हैं। अनन्त शाखाएं, असंख्य फूल हैं। लाखों पशु-पक्षियों के बसेरे हैं। पर उसका ऐश्वर्य ही प्रकाश को ढके ले रहा है। सहज प्रकाश। जो मैदानों में फूटता है। खिलते हुए कमल के सौरभ-सा बेरोक फैलता है।

खिड़की के पास खड़े हुए सिगार पीते हुए उन्होंने कहा, "न जाने क्यों, प्रभा बेटी, यह चित्र मुझे कितनी पुरानी बातों की याद दिला रहा है।" वे कुछ रुककर कहते गए, "हां, यह चित्र मुझे अपने बीते दिनों की याद दिलाता है। जब मैं छोटा था, गांव में रहता था। सहज आनन्द का जीवन था। कहीं कोई जटिलता नहीं थी। पर अब...।"

जिस तरह उनके मन में बात करने की प्रबल इच्छा पैदा हुई थी, सहसा उन्हें लगा, वह वैसे ही बुझ गई। उनके पास कहने के लिए कुछ भी नहीं है। प्रभा जितना जान सकती है, वे जितना कह सकते हैं, सब कहा-सुना जा चुका है। वे चुप हो गए।

यह अकेलापन है। मां होतीं तो वे इनकी देखभाल करतीं। इनको वर्तमान में उलझा सकतीं। इनका मन अतीत की ओर न भटकता। पुअर पापा ! प्रभा ने उनकी बांह पकड़कर खिड़की के पास से खींचते हुए कहा, "पापा, यह पेंटिंग बहुत अच्छी है। पर इसमें ऐसा क्या है, जिससे आप यों सोचने लगें ?"

फिर हंसते हुए बोली, "यह कुछ नहीं ! आप जान-बूझकर उदास होना चाहते हैं। उदास होने की सुपीरियरिटी आप छोड़ना ही नहीं चाहते। नहीं तो अभी आप शिकार पर चलते। उसके बाद लौटकर खाना, कॉफ़ी, सोना। और हां, वे लोग, गांववाले आज आएंगे। उनके

गीत भी तो सुनेंगे ?"

अब वे हंसे। बोले, "बहुत अच्छा। तुम मेरे सेक्रेटरी का काम कर डालना। वे गीत गाएंगे। मैं सुनूंगा। तुम कुछ लिख भी लेना। पर अब शिकार नहीं। काज़ों को खबर दे दो। झील में वे आराम से सोएं। हम लोग अभी बाहर चलकर टहलेंगे।"

दोनों उठ खड़े हुए। प्रभा ने बात चलाने के लिए कहा, "सच पापा, ये ग्राम-गीत कितने आकर्षक होते हैं। कितने अच्छे लगते !"

"हां प्रभा, मुझे ग्राम-गीत बहुत अच्छे लगते हैं, क्योंकि मेरी जीभ पर अब भी आषाढ़ के जामुनों का रस है और दांत के नीचे मक्के के भुट्टे का कच्चापन है और मेरे मन में सुनहरे धान लहलहाते रहे हैं—" उन्होंने कुछ ऐसा ही कहना चाहा, पर कह नहीं पाए। केवल अंग्रेजी में यही बोले, "ये गीत तुम्हें सचमुच ही इतने पसन्द हैं ? तुम्हारी एम० ए० तक की अंग्रेजी के बावजूद ?"

प्रभा ने अंग्रेजी में ही कहा, "पापा, अच्छे तो मुझे बस यही ग्राम-गीत लगते हैं। पढ़े-लिखे लोगों की कविता मुझे झूठी मालूम देती है। जिसकी बुद्धि विकसित हो गई, वह कविता नहीं लिख सकता। उसका कविता लिखना वैसे ही लगता है जैसे सचमुच के घुड़सवार का लकड़ी के घोड़े पर चढ़कर बच्चों के खेल खेलना। जैसे किसी हवाई जहाज के पायलट का पक्षियों को देखकर आहें भरना।"

वे मुस्कराकर बोले, "किसी कवि से मत कहना।"

प्रभा कहती है : इस चित्र में ऐसा क्या है ?
ऐसा क्या है ? उसमें मेरे लिए क्या नहीं है।
श्री रजनीकान्त, सुपरिंटेंडिंग इन्जीनियर, सिंचाई-विभाग की आंखों

के सामने उनका अड़तालीस वर्षों का जीवन घूम गया।

जब सवेरा हुआ, पूरब से सरल प्रकाश के स्रोत फूटे। उसने जिसे छुआ, उसे सुनहरा बना दिया। कहीं कोई अभाव नहीं। कहीं किसीसे कुछ दुराव नहीं। पर अपराह्न आते-आते वातावरण बदल चुका है। आसमान मटमैला हो गया है। धुंध छाई हुई है। किरणें उसीमें तिलमिला-कर खो गई हैं। सूरज का एक निस्तेज प्रेत अधर में लटक रहा है। किसी ओर से बादल बढ़ने का उपक्रम कर रहे हैं। प्रकाश है, पर अपने आपसे वंचित है। सबेरे की हवाएं, नई रेशमी साड़ियों की सरसराहट-सी, किसी अंधेरे कमरे में, किसी बाक्स में बन्द हो गई हैं। दिशा-बोध से शून्य आंधियां उठ रही हैं। लगता है क्षितिज के इस मिथ्या वृत्त को कोई अभी-अभी घुमाकर कोसों दूर फेंक देगा। सब कुछ चूर-चूर हो जाएगा। न जाने शाम कैसी होगी? आसमान साफ होगा कि नहीं? बादलों की रंगीनियां फैलेंगी? या इसी धुंध के गर्त में दोपहर, अपराह्न, शाम, सब एकाकार हो जाएंगे? यह दुर्बोधता, अस्पष्टता सबको निगल जाएगी।

ऐसे अपराह्न-सा जटिल, शंकाकुल वर्तमान लेकर वे कब तक सुखी रह सकेंगे?

अतीत की वह सरलता।

बहुत पहले बचपन में आंखमिचौनी खेलते थे। पड़ोस का एक खंडहर। उसकी एक खोखली दीवाल के पीछे जाकर वे छिप जाते थे। वे आंखें मींचे, दीवाल से अपना चेहरा सटाए, चुपचाप बैठे रहते थे। कोई पीछे से आकर उनकी पीठ पर हाथ मारता। बालकों की उन्मुक्त हंसी, शोर। उनकी आंखें बहुत देर तक बन्द नहीं रह पातीं। खंडहर की खोखली दीवाल। अतीत का सहारा भी इतना ही खोखला होगा। पर यह वर्तमान ही ऐसा है कि कुछ सहारा चाहिए। जहां बैठकर आंखें

मींची जा सकें। जहां से उसपर दूर की निगाह डाली जा सके।

वे दिन भी कितने सरल थे। उनमें मेरे लिए क्या नहीं था? उजाला था। नीला आसमान। चिड़ियों की पांतें कितना ऊपर जाती थीं। सूखती घास के सुनहले मैदान। हरे-भरे, चमकदार पेड़। बांसों का झाड़। जिनके अन्दर अंधेरा कैद था। ऊपर चमकदार तन्तुओं का ताना-बाना। घनी अमराइयां। किनारे पर बबूल का पेड़। उसपर फैली हुई अमरबेलि का गुम्बद। महुए के ताजे लाल-हरे पत्ते। सारी रात चैत की चांदनी में टप्-टप् सुन पड़ती थी। सबेरा होते-होते हवा को इतना असंयत कौन बना देता था? आसपास के आमों से सूखते हुए बौरों को उड़ाकर समीर न जाने कितने आसवों को एक में मिला देता था। क्या अब यह सब नहीं होता? क्या वह मेरे ही लिए था?

तब उजाला था, मेरा बचपन था। जो कुछ था निगाह के सामने था, नंगे पांवों के नीचे था। वही मेरा संसार था। आज सब कुछ धूसरित है। पर तब के रंग चटकीले होते थे। शाम होती। आसमान रंग-बिरंगा हो जाता था। आज से ज्यादा गहरे रंग। या यह भी भ्रम है? जैसे तब भ्रम था कि सब ओर उजाला है, जिसमें हरियाली चमकती है?

पश्चिम में आग-सी लग जाती थी। उसे धुएं के रंग के घने बादल ढकने को दौड़ते। पूरब में नीला आसमान; जिसपर सफेद बादल होते। वे धुंधले हो जाते। फिर पच्छिम से फूटतीं, क्रम से फैलती हुई, मिटने-वाली किरणों के सहारे लाल हो जाते। फिर लोहित हो जाते। फिर काले होते। उसमें बिजली लरजती। फिर छायाएं फैलतीं। अंधेरा बढ़ता। हम भागकर घर आते। अन्दर की दालानों में एक कोने में दिया टिमटिमाता। उसकी लौ इधर-उधर हिलती। दीवारों पर घटती-बढ़ती दैत्यों-सी छायाकृतियां। एक ओर तड़प। एक ओर गरज। और

मां आंखों में काजल डालतीं। हमारे पास बैठतीं। पड़ोस के घर में बकरियां मिमियातीं, गायें रम्भातीं। आसपास के घरों में कोई किसीको पुकारता। लालटेनें लेकर लोग कच्ची छतों के छेद भरते। हम चारपाइयों पर लेटते। फिर उठकर बैठ जाते और कहते कि आज पानी बरसेगा। कल सवेरे दरवाज़े गंगा-जमुना बहेंगी। और घर में लोग रोपे जानेवाले धान की, लहलहाती जुवार और गाभिन भैंसों की चर्चा करते।

वे एक ज़मींदार के बेटे थे। पिता एक छोटे ज़मींदार थे, जिन्हें बड़े ज़मींदार किसान मानते; किसान उन्हें राजा समझते। गांव का कच्चा और प्रशस्त घर। ग्रामीण सम्पन्नता। अदालतों में मामले-मुकदमे होते। उनकी अशिक्षा के कारण बैजनाथ मुख्तार जैसा चाहता वैसा करता। वे समझते, कहीं कुछ धोखा है। पर जान न पाते वह धोखा कहां है। रजनीकांत को उन्होंने पढ़ाना चाहा। सोचा, लड़का इण्ट्रेन्स पास कर लेगा, घर पर बैठकर ज़मीन-जायदाद की बातें समझ सकेगा; कानूनी दाव-पेंच, वकीलों के शिकंजे, मुहर्रिरों की चापलूसी, अर्ज़ीनवीसों की धोखेबाज़ी, हाकिमों की निगाह, अहलकारों के इरादे—यह सब समझकर पैतृक सम्पत्ति बचाने-भर की विद्या आ जाएगी। बैजनाथ को अलग कर दिया जाएगा।

न जाने क्या था कि गांव में पैदा होकर, उम्र-भर वहां रहकर भी वहां के जीवन को वे मन से नहीं अपना सके।

यह गांव की ज़िंदगी है!

इसकी याद के सहारे साहित्यिक मधुरता की दूकान चलती है। पर यहां आज भी बर्बरता का शासन है। यहां कमज़ोर होकर चलने में सबकी ताकत का बोझा ढोना पड़ता है। ताकतवर होने के लिए सब

कमजोरियों से समझौता करना पड़ता है। पार्टीबंदी। दूसरे बदमाशों को नीचा दिखाने के लिए अपने घर पर बदमाश पालना। अपने पाले हुए बदमाशों से अपने पड़ोसियों को डराना, पर उनसे अपने-आप भी डरना। उनकी उद्दण्डता को सहना। उनके अपराधों को अपनाना। उनके लिए अदालतों में मुकदमे लड़ना। पुलिस का आतंक। दिन-रात उसकी आराधना करना। उसके लिए झूठे गवाह ढूंढ़ना। वैसा न करने पर खुद झूठे गवाहों का शिकार बनना। चारों ओर डकैतों का खतरा। अरक्षा और आतुरता की ज़िंदगी। प्रकृति के उत्पात। गर्मियों के सर्वग्रासी अग्निकांड। वर्षा का प्रलयंकर धारासम्पात। गिरते हुए घर। धार में बहते हुए छप्पर। पानी में डूबती, सड़ती हुई फसलें। जाड़ों की उपल-वृष्टि। पाला, ओस, कुहरा। पछुवा हवा, टिड्डियां, चूहे। हड्डियों को गलाकर पैदा की हुई, लहलहाती खेती को निरुपाय होकर इनके सामने सर पटकते, घिसटते देखना। सबसे डरना। अपने से ऊंची जातिवालों से, ऊंचे वर्गवालों से, महाजनों से, वैद्यों से, थाने से, तहसील से, भूत-प्रेत से, महामारी से, भाग्य से, भगवान से—सबसे डरना। जिससे न डरना, उसके लिए डर बनकर रहना। कदम-कदम पर झगड़े और मुकदमे की बातें। नहर के पानी के झगड़े। बागों से फल और लकड़ी लेने के झगड़े। खेतों की मेड़ के लिए होनेवाली फौजदारियां। अपनी ज़मीन पर से जानवरों के निकास को लेकर होनेवाले हत्याकांड।

जहां बातचीत के केवल दो रूप हों—खुशामद या गाली-गलौज। शिष्ट भाषा जहां बुज़दिली की निशानी है। उदारता जहां अपने स्वत्व को अपने पास रोक रखने की असमर्थता का नाम है। दूसरे को सहायता जहां इसलिए दी जाती है कि वह बाद में सामने आंख न उठा सके। छोटे-से मसले को भी जहां बड़े मुकदमे का रूप दिया जाता है कि लोग बड़े मसले पैदा करने की हिम्मत न दिखा सकें। जहां गरीबी

एक ऐसा चुम्बक है जो सभी उपद्रवों के लौह आघातों को दूर से अपनी ओर खींच लेती है। जहां अमीरी में ऐसी आग है जो पड़ोसियों को जला देती है। सब उसे छूने से पहले ही उसे देखते ही जलते हैं, उसे बुझाना चाहते हैं।

वे ग्राम-जीवन की इन जटिलताओं में बंधकर कभी-कभी छटपटाते। इस जीवन का कोई दूसरा पक्ष हो भी तो वह उन्हें खींच न पाता। फिर भी किसी तरह मन को दबाकर उन्होंने यहां के वातावरण में अपने को खपा लिया था। बांबी की दीमक की तरह। घास में मटियाले गोजर की तरह। पत्थर के नीचे चुपचाप पड़े हुए कनखजूरे की तरह। किन्तु अब रजनीकांत की प्रतिभा ने एक बार उनके मन में फिर पहले की तृष्णा उकसा दी। मन की सारी घुटन, अपमान, क्षोभ, निराशा, निरुपायता—उनसे कहने लगी : रजनीकांत को बचाओ। सांपों और कनखजूरों का साथ, प्रकृति के विषम आघात, अस्तित्व की रक्षा के लिए कदम-कदम पर झेली जानेवाली अवज्ञा, दुर्बलता के साथ रोज-रोज होनेवाला समझौता—इस सबसे उसे बचाओ। तुम जो जहर पी चुके हो, उसके खाली पात्र तक को उसके आगे से खींच लो।

आज के श्री आर० कान्त, सुपरिण्टेंडिंग इन्जीनियर। मोटी तनख्वाह। विद्या, बुद्धि, सम्पन्नता की प्रसिद्धि। निर्भीकता। क्रूर न्यायप्रियता। शहर में नवीनतम डिजाइन की बड़ी कोठी। कीमती फर्नीचर। फ्रिज, कूलर्स, रेडियोग्राम, कीमती कालीनें। स्विमिंग पूल। कलापूर्ण वाटिका। टेनिस कोर्ट। पोर्टिको के पंख के नीचे चमकदार ब्यूक कार। इसपर कलाप्रियता की ख्याति। चित्रकला और संगीत के विशेषज्ञ। ग्रामगीतों के प्रसिद्ध प्रेमी। विदेशी पेयों के निपुण ज्ञाता और भोक्ता। शिकार का

शौक। शताब्दी का सारा हर्ष, उल्लास, नवीनता उनके जीवन में समा गई है। जीवन ने उन्हें सब कुछ दिया है, उनसे बहुत कुछ पाना चाहता है। प्रभा उनकी अकेली सन्तान है। अविवाहित। अमेरिका से शिक्षा पाकर आनेवाले प्रेमी की प्रतीक्षा कर रही है।

पहले सब धीरे-धीरे हुआ। हाई स्कूल से कालेज, यूनिवर्सिटी, इन्जीनियरिंग कालेज। पिता की सम्पत्ति की आखिरी बूंदें उनके भविष्य की अदृष्टता में समाती रहीं। वे बूढ़े हो रहे थे, पर निराश नहीं थे। छोटी-सी ज़मींदारी की आय नगण्य हो रही थी। किसानों के लगान न देने के आन्दोलन चल रहे थे। मुकदमों की संख्या बढ़ रही थी। मंदी के दिन। खेती के सहारे जो कुछ अनाज घर में आता, उसकी परिणति कुछ गिने-गिनाये रुपयों में होते देर न लगती। रजनीकान्त छुट्टियों में घर आते। घर की दशा पर दुःखी होते। पर उनका चमकदार चेहरा, साफ-सुथरे सूट, टाइयां, यह सब देखकर वे समझते, मंज़िल नज़दीक है। यह मंज़िल नज़दीक थी भी, पर रजनीकान्त का मन अपनी पहली मंज़िल से दूर भटक गया था। मां का स्नेह उन्हें अच्छा लगता, पर जल्दी उबा देता। गांव में उन्हें जान पड़ता, धूल पहले से ज़्यादा हो गई है। अमराइयों में वह सघनता नहीं। घास के मैदान वीरान-से लगते। शाम के झुटपुटे की अस्पष्ट मादकता में उन्हें उदासी और तबाही-सी जान पड़ती। वह पहलेवाला आकर्षण नहीं, पहले का मोह नहीं। पिता के पास बैठते और उन्हें बातचीत के विषयों की कमी जान पड़ने लगती। उत्साह के वेग में उनके पिता अपने पुत्र के परिवर्तन को न समझ पाते। पर रजनीकान्त समझकर भी समझना न चाहते। धीरे-धीरे वह स्थिति भी समाप्त हुई। वे इंजीनियर बने। माता-पिता का देहान्त हुआ। एक पर्दा-सा गिरा, दूसरा उठा। जीवन में उल्लास, आनन्द और जटिलताओं ने प्रवेश किया। एक पर्त पर दूसरी पर्त चढ़ती गई। कम्पनियों के शेयर्स,

बैंक के एकाउण्ट्स। चलाचल सम्पत्ति। उसके प्रबन्धक। नाटक के अभिनेताओं-सा रहन-सहन। कभी कला-प्रेम का दम्भ। कभी दरिद्रों और संस्थाओं की सहायता द्वारा खरीदा हुआ सस्ता आत्मतोष और सामाजिक महत्त्व। समय-समय पर पहने जानेवाली भांति-भांति की वेश-भूषा। समवयस्कों और सहकर्मियों का साथ। पिकनिकें। उनकी पत्नियों से सहज लालसापूर्ण सम्पर्क। बड़े-बड़े शहरों के होटलों में आवारागर्दी। निम्न कोटि के विदेशियों का साथ। छिपकर किए गए दुष्कर्म। उनको छिपाने के लिए ब्लैकमेल में दिए गए रुपये। साथियों से धोखेबाजी। जो कहना, उसे न करना। जो करना, उसे न कहना। जो कहना और करना उसकी डींग हांकना। जहां चुप रहने का मन हो, वहां बोलना। जहां बोलना हो, वहां चुप रहकर गम्भीर व्यक्तित्व की ख्याति लूटना। जहां गाली देनी हो, वहां प्रशंसा करना। जहां प्रशंसा करनी चाहिए, वहां मुस्कराहट से, व्यंग से या स्पष्टवादिता की स्पष्ट ख्याति के सहारे निन्दा करना। एक नाटक खेलना, खुद खेलना, खुद ही देखना, खुद ही आलोचना करना, खुद ही रीझना। फिर उसीमें तल्लीन हो जाना। सम्पत्ति, ऊंचा पद, चाटुकारों का साथ, अच्छी शिक्षा, सम्मान पाने की महत्त्वाकांक्षा, सबका आदर और प्रेम लूटने की सहज प्रवृत्ति, परम्परा से मिली हुई किसानों की स्वार्थ-बुद्धि—इस सबने एक ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण किया कि सब कुछ साफ होते हुए भी कहीं कुछ भी साफ नहीं। उछलती-बहती चमकदार धारा के नीचे चट्टान नहीं, दलदल है। पर अब जो कुछ बचा है, वह ऊपर की तह पर आ चुका है। जो भी है, वही पूंजी जीवन को जीने लायक बनाने के लिए काफी है।

शहर से दूर एक गांव के किनारे एक खंडहर है। उसकी दीवारों

पर लोना लग रहा है। मटियाले रंग पर सफेद भूरे नमक की सी एक हलकी पर्त चढ़ रही है। दीवारों के झरोखों और दरवाज़ों की जगह किसी पागल की भय-विस्फारित आंखों जैसे बड़े-बड़े सूराख बने हैं। उनकी लकड़ी किसी अलाव में जल चुकी है। एक दरवाज़े के ऊपर दो काली लकड़ियों के बेढंगे टुकड़े अभी बाकी बचे हैं और अपनी जगह से खिसककर दो विभिन्न दिशाओं में झांकने लगे हैं। ऊबड़-खाबड़ ज़मीन पर अड्सा, धतूरा, भटकटैया के छोटे-छोटे झाड़ उभर आए हैं। एक कोने में एक बबूल उग आया है। बबूल का जवान पेड़। तना काला पड़ने लगा है। छोटी-छोटी पत्तियों ने पेड़ को ढककर उसे एक वृत्ताकार फूल-सा बना दिया है। हरी-हरी पत्तियों पर भुंये-से, छोटे-छोटे पीले फूल। नीचे डालों में बया के घोंसले लटक रहे हैं। खंडहर की विषण्ण निष्प्राणता में कहीं कुछ जान होगी तो यहीं होगी। पर इस समय सब कुछ शान्त है। क्षीण चांदनी है। हवा में गति नहीं है। त्रयोदशी का चांद डूबनेवाला है। बबूल के तने के पास कोई कीड़ा फुदक-फुदककर चट्-चट्-चट् की आवाज़ करता है। फिर रुक जाता है। चांद की डूबती-सी किरणों में इस खंडहर से कुछ उभरता-सा जान पड़ता है। शायद उसीकी आत्मा है। हां, यह देश ऐसा ही है। यहां के खंडहरों की आत्माएं होती हैं। वे तुम्हारे सामने न पड़ें यही अच्छा है। नहीं तो वे तुम्हारे मन में एक टीस पैदा कर देंगी, पलकों में गीलापन बिखेर जाएंगी और खण्डहरों की मौन शुष्कता में आकर फिर से खो जाएंगी।

जो उभरता-सा जान पड़ता है उसे वहां कोई संभालनेवाला नहीं। वह फैलता है, सब-कुछ आविष्ट करता है। चांद डूबता है। किसी अभिशापपूर्ण निश्वास-सी हवा धीरे से बहती हुई आती है। फिर सब-कुछ अंधेरे में डूब जाता है। पर यही अभिशाप है, यही निश्वास है जो रजनीकांत के मन में उमड़कर उन्हें ग्राम-गीतों की ओर खींचता है।

ग्राम-संस्कृति की बौद्धिक उपासना के लिए प्रेरित करता है। खंडहर के अभिशाप में भी सहृदयता है।

पर खंडहर अपने-आप में खंडहर है। रजनीकांत का मन उसकी खोखली दीवारों में जाकर भले ही छिप ले, पर उनके पैर उधर नहीं उठते हैं। वह अतीत है। मन में करुण-मधुर भावुकता को जगाने का अदृष्ट उपादान। उसे साकार करना गलती होगी। वर्तमान का उद्दाम नाटक नष्ट हो जाएगा। चेहरों की नकाबें गिर जाएंगी। बिजली की चौंधियानेवाली रोशनी में वे पर्दे की डोरी ढूंढ़ेंगे, पर वह नहीं मिलेगी। जो जहां है, वहीं ठीक है। धतूरे का विष, भटकटैया के कांटे, वे जहां हैं, वहीं रहें। सांपों की बांवियां, बिसखोपरों की दराज़ें।

डाकबंगले के पीछे लम्बे-चौड़े लॉन पर वे टहल रहे थे और कुछ गुनगुनाने लगे थे। बहुत दिन के बाद उन्हें अकेले टहलने का अवसर मिला था। बहुत दिनों के बाद उन्होंने अपना गाना सुना। वे धीरे-धीरे गाते रहे, और उन्हें लगता रहा, यह किसी भूले हुए प्रणय की आकस्मिक चेतना है। लोकल अनेस्थीशिया से पथराई हुई धमनियों में फिर से रक्त संचार हो रहा है।

दूर से मोटर का ज़ोरदार हार्न सुनाई पड़ा। फिर ब्यूक का गम्भीर स्वरहीन स्वर कान में पड़ा। तो गंगाधर ऐण्ड कम्पनी आ गई। आवाज़ और साफ सुनाई दे रही है। ब्रेक लगाने की सिसकी, ऐक्सिलरेटेड इंजिन का एकदम से बुझना। यह शोफर बिलकुल पागल है। कितनी तेज़ी से गाड़ी पोर्टिको में ले आता है! फिर एकदम से ब्रेक लगाना! इसे डाटना पड़ेगा। ओः, यह इतने ज़ोर से गाड़ी का दरवाज़ा कौन बंद करता है। इसीसे गाड़ी रैटिल करने लगती है। इतने ज़ोर की हंसी!

खूब ! फिलासफर विनायक होगा। सदाबहार। एवरग्रीन।

"हलो, हलो, ओल्ड मैन। इधर पीछे अकेले में किससे ताक-झांक कर रहा है ?"

वे हंसते हुए विनायक की तरफ बढ़े। हाथ मिलाया, फिर उसके कन्धे को शरारत के साथ मलते हुए बोले, "क्यों, सब लोग आ गए न ?"

विनायक ने तेजी से कहा, "मैं, गॉडेस गिर्वन और गंगाधर आ गए। घोषाल एक ज़रूरी काम से फंस गया। पर, कोई बात नहीं। अपना मन मत छोटा करो। हम तीन ही तुम्हें बहुत ऊपर उठा ले जाएंगे। खूब ऊपर जाकर छोड़ेंगे। कोई फिक्र नहीं।"

वे विनायक की बात सुनना छोड़कर गंगाधर और गॉडेस गिर्वन, उर्फ देवीदत्त से मिलने के लिए सामनेवाले बरामदे में पहुंचे, उसका मन छोटा न हो जाए, इसलिए हंसते हुए। पीछे-पीछे वह भी आया। चारों बरामदे में मिले। हंसते हुए उन्होंने सबसे हाथ मिलाया। बोले, "सफर कैसा रहा ?"

देवीदत्त ने कहा, "फर्स्ट क्लास, तेईस मील ट्रेन सें आने में तो लगा तेईस दिन लगेंगे। पर स्टेशन से इधर के सात मील तो शायद सात सेकंड में पार हो लिए।"

इसी बीच में विनायक की जोरदार आवाज़ बनावटी गम्भीरता के पर्दे से सुनाई पड़ी। "ओह ब्रदर्स, इज़'ण्ट दिस रिगमैरोल एवर गोइंग टु स्टाप ? क्लोज़ दिस सबजेक्ट ऐण्ड ओपेन द बॉटल दैट लूज़ेन्स द टंग फ़ॉग्स द ब्रेन।"

विनायक एक विश्वविद्यालय में संस्कृत का प्रोफेसर था। कहता, वहां मैं इतनी हिन्दी और संस्कृत बोल लेता हूं कि बाहर आने पर ये

भाषाएं मेरे स्टॉक में नहीं रह जातीं। इसीलिए वह ज्यादातर अंग्रेजी बोलता। उसे विश्वविद्यालय में बन्द गले का मामूली कोट और पतलून पहनकर जाने की आदत पड़ गई थी। हाथ में पतली छड़ी लेकर चलता था। शायद इसीके प्रतिशोध में वह शाम को कीमती सूट पहनता और टाई लगाता। इस वक्त वह कार्डुराय का पतलून और अमरीकी स्टाइल का जैकेट पहनकर, हाथ में हंटर लिए, डकैतों की सी धज में आया था। रजनीकांत का अभिन्न मित्र। वे जाड़े के दौरे पर निकले तो उनके दो और मित्रों को साथ लेकर देहात का दर्शन करने चला आया। तभी उसे प्यार से फिलासफर कहते। वास्तव में उसने भारतीय दर्शन का अध्ययन किया भी था। परन्तु अपने इन क्लब के मित्रों में वह अपने उस ज्ञान को वैसे ही छिपाता जैसे कोई विधवा अपना अवैध गर्भ छिपाती है।

पढ़ने के सिवा उसके सिर्फ दो शौक थे, पीने का और बोलने का। जितना पीने का शौक था, उतना पी नहीं पाता था। उसी तरह जितना बोलने का शौक था, उतना बोल भी नहीं पाता। श्रोताओं की कमी पड़ जाती। फिर भी रजनीकांत उसकी बातों को जी भरकर सुन लेते थे। उसे अपनी आवाज से अत्यधिक प्रेम था। अपनी प्रेयसी को जैसे लोग भिन्न-भिन्न मुद्राओं में देखना चाहते हैं वैसे ही वह भी अपनी आवाज के अनेक नाटकीय प्रयोग श्रोताओं पर करता रहता। सुननेवालों को, विशेषकर रजनीकांत को इसमें आनन्द मिलता। इससे भी ज्यादा आनन्द उसे अपने-आपको मिलता।

गॉडेस गिर्वन उर्फ देवीदत्त। लोग उसे प्यार से जी० जी० कहते। विनायक कहता, इन्हें चाहे डी० डी० या दीदी कहो, चाहे जी० जी० कहो, इनका प्यार एक डिग्री भी बढ़ता-घटता नहीं। टेम्परेचर अपनी जगह रहता है। वह एक सफल वकील था। अच्छी आमदनी थी।

अपने मीठे स्वभाव के लिए प्रसिद्ध था। वकालत की सफलता के सिलसिले में दो-चार दान-धर्मवाली संस्थाओं का सभापति भी था। बार-असोसियेशन का मंत्री। टेनिस अच्छी खेलता था। ब्रिज में शहर का सबसे अच्छा खिलाड़ी माना जाता था। आदमी को दस आदमियों में प्रमुख बनानेवाली जितनी तरकीबें थीं, वे उसका सहज गुण बन गई थीं। पीने का वह भी शौकीन था। पर विनायक की तरह नहीं। वह अपनी जबान से शराब की और शराब पीनेवालों की कभी चर्चा तक न करता। पीता भी तो इसी भाव से जैसे वह साथवालों का सिर्फ शिष्टता के नाते पीने में भी साथ दे रहा हो। पर विनायक उसके बारे में अच्छे शराबियों के लिए प्रयुक्त होनेवाली सभी प्रशंसाएं खर्च कर देता। वह कहता, जी०जी० देखने में बुद्धू है। पर पीता जाएगा और उसकी पलक तक न भंजेगी। यह मछली की तरह पीता है। इसके पेट में सोख्ता बना है—सोकेज पिट। शराब इसके हाथ तक ही शराब रहती है, मुंह में पानी हो जाती है। शाम से आ गए जो पीने पर, सुबह तक आफताब हैं जी० जी०।"

देवीदत्त की कमजोरी थी, बड़े अफसर। जैसे कुछ शिकारियों को पागलपन-सा होता है, बराबर शेर, चीते, तेंदुवे मारते रहने का, वैसे ही उसे ऊंचे अफसरों को दोस्त बना रखने का शौक था। कोई जरूरी नहीं कि वह उनसे हमेशा गलत फायदा ही उठाने की सोचे। उसे उनका साथ अच्छा लगता, बस इतना ही। परसों कमिश्नर साहब के साथ संगीत-सभा में जाना है, कल जज साहब ने दावत पर बुलाया है, आज सुपरिंटेंडिंग इंजीनियर साहब ने शिकार का निमन्त्रण दिया है—सिर्फ इतना कहने का अधिकार रखना उसे अच्छा लगता। उनकी अन्दरूनी जिन्दगी कैसी है, इसके प्रति उसकी अदम्य उत्सुकता होती। जरूरत पड़ने पर वह कह सकता, "मिस्टर क, वही, वही, इराक में जो

एडवाइज़र होकर गए हैं, फलां ब्रांड का सिगार पीते हैं। मिस्टर ख, चीफ कंज़र्वेटर को बटेर का गोश्त बहुत पसन्द है। जी ? कबाब ? मिस्टर ग तो वेजिटेरियन हैं। जी हां। मुझे खुद मालूम है। इधर चार दिन के भीतर गोश्त खाने लगे हों तो नहीं कह सकता।"

खेल-कूद, राजनीति, विज्ञान, कला इन सब विषयों पर वह थोड़ी-थोड़ी देर बात कर सकता था और बुद्धि में वह कितना साधारण है, यह जानने के लिए लोगों को असाधारण बुद्धि का ही प्रयोग करना पड़ता।

गंगाधर रजनीकान्त के साथ कालेज में पढ़ा था। वे इंजीनियर हुए, गंगाधर डाक्टर हुआ। संयोग की बात, उसी शहर में अब रजनीकान्त भी आ गए थे। विनायक, जी० जी०, अनुपस्थित घोषाल, इन सबसे उनका परिचय गंगाधर ही ने कराया था।

यही थी गंगाधर ऐण्ड कम्पनी।

अंधेरा घिरने लगा। अगहन की शाम धीरे-धीरे उतर रही थी।

सूरज डूबा। आकाश मेघरहित था, पर क्षितिज में चारों ओर धुंधली लालिमा का एक वृत्त-सा खिंच आया जो नीचे की ओर नीले धुंधलके के साथ घुलता जाता था। मैदानों की शाम। ऊपर की ओर आकाश नील से नीलतर होकर बीच में अंधेरे से कुछ षड्यंत्र कर रहा था। उधर पृथ्वी के निकट घने कोहरे की एक मोटी रेखा चारों ओर से दूसरे वृत्त के रूप में खिंचने लगी। गहरी, अपारदर्शक, वृक्षों के शिखरों से कुछ ही नीचे वह अवलम्बहीन-सी फैली रही। और फैलती रही। पृथ्वी तक अपनी गहनता खोकर वह फैलती ही गई। तब तक धुंधले आसमान में तारे चमक उठे।

धीरे से पछुआ बही। दूर से काजों और सारसों की दीर्घायित पुकारें हवा के सहारे उड़कर आईं। मिटती उजियाली में कौओं का एक जोड़ा तेजी से] पंख फटकारता हुआ पश्चिम से पूरब को जाता दीख पड़ा। चिड़ियों के झुंड बहुत पहले निकल चुके थे। यह एक अकेला जोड़ा कहीं छूट-सा गया था। इतना विस्तृत आकाश। विपुला पृथ्वी।

बरामदे के कोने में चुपचाप खड़ी प्रभा को लगा, सबने उसे छोड़ दिया है, क्योंकि पास के बड़े कमरे में गैस की रोशनी फैली है, ग्लास खनक रहे हैं और उसके पिता हंस रहे हैं, उसके बिना भी प्रसन्न हैं।

एक ओवरसियर ने आकर उसे सलाम किया। प्रभा ने घूमकर उसकी ओर देखा। भौंहों को ऊपर उठाकर पूछा, "क्या है ?"

"गानेवाले आ रहे हैं सरकार। आठ बजे तक सब आ जाएंगे। एक से एक खुर्राटों को बुलाया है सरकार !"

गानेवाले आ रहे हैं ! पर इस समय ओवरसियर का आना उसे अच्छा नहीं लगा। उसे हटाने के विचार से बोली, "अच्छा है ! उन्हें शेड में बैठालिए। जब गाना शुरू हो जाए तो पापा को बता दीजिएगा।"

पर ओवरसियर गया नहीं। कुछ हिचकते हुए बोला, "सरकार, सुनते हैं बड़े साहब इन गीतों पर किताबें भी लिखते हैं !"

अनिच्छा से, "नहीं तो"।

"तो फिर सरकार, मैंने किसके लिए सुना था ? क्या आप ही इन गीतों पर कोई किताब लिख रही हैं ?"

प्रभा ने न जाने क्यों झूठा जवाब दिया, "हां, मेरा इरादा तो है। क्यों ?"

बड़ी आत्मीयता से, "सरकार, मेरी मां अभी जिन्दा है। उसे सब तरह के गीत आते हैं। जांत के गीत, सावन, बारहमासे और शादी-ब्याह

के गीत—यह सब तो सभी औरतें जानती हैं सरकार ! बड़े साहब पन्द्रह दिन की छुट्टी दे दें तो मैं पूरी पोथी की पोथी भर लाऊं ।"

रूखी आवाज़ में प्रभा ने कहा, "बड़े साहब से ही कहिए । मैं क्या बता सकती हूं ।"

ओवरसियर ने आश्चर्य से आंखें मत्थे पर चढ़ा लीं। बोला, "आप ही तो सब कुछ कर सकती हैं ! और आप कहती हैं, मैं खुद बड़े साहब से बात करूं ? उनके सामने इस नाचीज़ की हिम्मत भी पड़ेगी ? इतने बड़े हाकिम के आगे ज़बान हिलाना कोई मामूली बात है सरकार ?"

प्रभा कुछ नहीं बोली । ओवरसियर ने रुककर कहा, "सन् ३५ की बात है सरकार । मारिसन साहब का ज़माना था । उनकी मेम साहब को भी दीहाती गाने बहुत पसन्द थे । पहले तो कम समझती थीं बाद में हमी हिन्दुस्तानियों ने समझा दिया । फिर तो साहब, उन मेम साहब ने बहुत-से गाने लिखाए । किताबों पर किताबें लिखाकर उनका अंग्रेज़ी में उल्था किया और विलायत जाकर छपवाया । हमीं लोगों ने सरकार, वे गाने इकट्ठे किए थे । इस नाचीज़ का ज़िक्र तो उन्होंने एक किताब तक में कर डाला । बड़ा नाम करा दिया सरकार, वरना यह नाचीज़ किस लायक था ।"

प्रभा मुस्कराई । यह ओवरसियर भी एक कैरेक्टर है । कमीज़ पर पूरी बांह का लम्बा पुलोवर, निहायत गन्दा । खाकी पतलून बिना क्रीज़ की ; जूते बिना पालिश के । बाल कड़े और खड़े, तेल की अधिकता के बावजूद । मूछें बड़ी और होठों को ढकनेवाली । लगभग पचास की उमर पार कर चुका है । चेहरे पर खुशामद, काइयांपन और आत्मविश्वास की स्पष्ट झलक । प्रभा ने सोचा, काम करने में होशियार और परिश्रमी आदमी ऐसे ही होते होंगे । पूछा, "आपने खुद कोई किताब क्यों नहीं लिख डाली ?"

"कैसी किताब सरकार ? अपनी किताबें तो नहर की पटरियां, पुल —यही सब हैं। हम क्या खाकर किताबें लिखेंगे सरकार ? यहां तो हुक्म की गुलामी करनी है। मारिसन साहब का हुक्म हुआ, 'मेम साहब तुम्हारा औरत लोग का गाना सुनना मांगता।' बात की बात में सात पर्दों के भीतर बैठनेवाली औरतों का हुजूम जमा कर दिया, सरकार, नहीं तो इस बारह, चौदहमासा के चक्कर में पड़के हमें क्या करना था, सरकार ?"

फिर धीरे से जैसे कोई राज़ की बात कही जा रही हो, "बड़े आदमियों की बड़ी बातें सरकार। जैसे ज़ायका बदलने के लिए बड़े-बड़े लोग बाजरे की रोटी खा लेते हैं ! हमारे मारिसन साहब ने तो एक बार बीड़ी भी पी थी, सिर्फ देखने के लिए कि कैसी लगती है। पीकर बहुत हंसे। वैसे ही हुज़ूर लोगों को दीहाती गीतों का शौक है, सरकार ! बढ़िया-बढ़िया दादरा, कव्वाली, टप्पा सुनते-सुनते तबियत में आ गया कि कहारों, चमारों के गीतों का भी ज़ायका लिया जाए !" कहकर वह हंसने लगा। तम्बाकू के प्रयोग से सड़े हुए दांतों की एक टेढ़ी-मेढ़ी कतार लैम्प में स्पष्ट दिखी।

यह भी एक कैरेक्टर है। फिर भी इसकी बातें सुनते जाना असह्य है। इसे इसी वक्त जाना चाहिए। प्रभा ने रुखाई से कहा, "अच्छी बात है, वहां शेड में उन लोगों के बैठने का इन्तजाम देख लीजिए।"

जाते-जाते ओवरसियर ने फिर एक बनावटी हिचक के साथ कहा, "सब इन्तज़ाम तो लैस है ही सरकार। गरीब के बाल-बच्चों का भी खयाल रखा जाए। मारिसन साहब की मेम साहब जब यहां आईं तब मैं एक मामूली मेट था, सरकार, काम-भर का लिख-पढ़ लेता था। पर जब गईं तो यह नाचीज़ ओवरसियर हो चुका था !"

कमरे के अन्दर फिलासफर विनायक मत्थे को परेशानी की असंख्य रेखाओं में जकड़कर चीख रहा था, "वाटर ऐण्ड वाटर एवरी व्हेयर बट नाट ए ड्रॉप टु ड्रिंक।'''प्यारे भाइयो, यह भी कोई बात हुई। तुम अपने साथ चीज क्यों नहीं लाए ? पनीर नमकीन, चिकनी, ठोस। जिसके बिना यह ग्लास बेकार हुआ जा रहा है ! मिस्टर रजनीकान्त, ऐसी हिकारत पर उतरकर तुमने कुछ बचा भी लिया तो क्या हुआ ?"

सब हंस रहे थे। फिलासफर वैसे ही चीखता रहा, "हमारे शहर के पड़ोस में एक अमेरिकन मिशन का लेप्रसी असीलम है। उनके पास दस-दस पाउण्ड के चीज के बड़े-बड़े डिब्बे सैकड़ों की तादाद में मौजूद हैं। कोढ़ी लोग उसे खा नहीं सकते। वहां की पनीर मारी-मारी फिरती है। उसे कोई पूछता तक नहीं। और यहां आधा पाउण्ड पनीर के लिए हम लोग हैरान हो रहे हैं।"

लोगों ने उत्साह से कहकहे लगाए। विनायक ने गम्भीर उद्दंडता के साथ अपने तीनों साथियों पर एक कड़ी निगाह डाली, फिर उन्हें चुनौती-सी देते हुए एक सांस में व्हिस्की का ग्लास मुंह से लगाकर खाली कर दिया। किसी महत्त्वपूर्ण आखिरी फैसले की तरह उसे मेज पर ठसक के साथ रखकर वह चुपचाप सामने दीवार की ओर देखने लगा। कहकहों की आवाज मिटते ही उसके होंठों पर एक शरारत-भरी मुस्कराहट फूट निकली और एक अजब-सी धुन में उसने गाया "वाटर ऐण्ड वाटर एवरी-व्हेयर बट नाट ए ड्रॉप टु ड्रिंक।"

उसके बाद कथावाचकों की सी आवाज में उसने कड़ककर कहा, "अर्थाऽऽत्''''''" फिर स्वरपूर्वक पंडिताऊ पद्धति में गाया :

"सर्वा कनकधाराभिः प्लावितास्ति वसुन्धरा।
दारिद्रयच्छत्रसच्छन्ने न छायान्ति बिन्दवः॥"

इस बार जी० जी० ने पूछा, "इसका क्या मतलब ?"

"इसका मतलब ?" जैसे कोई बहुत गुप्त बात कही जा रही हो, इस तरह से विनायक ने धीरे से समझाते हुए कहा, "मतलब यह कि मैं सिर्फ यूनिवर्सिटी में संस्कृत पढ़ाता ही नहीं, संस्कृत जानता भी हूं।"

जब सब लोग हंस चुके तो विनायक ने फिर से मैत्रीपूर्ण भर्त्सना की मुद्रा में कहा, "आर० के०, तुम्हें यह कंजूसी सूझी कैसे ? तुम चीज़ के दो-चार डिब्बे भी नहीं मंगा सकते थे ? तुम्हारे स्टाक का लोहा-सीमेंट दस-पांच रुपये में भी नहीं बिक सकता था क्या ?"

जैसा अवसर था उसीके अनुरूप अपने को बनाते हुए रजनीकान्त ने उसी मैत्रीपूर्ण भर्त्सना के स्वर में कहा, "विनायक, साथ-साथ खाना और पीना, यह जंगली आदत है। इसे छोड़ो, जब खाना हो तो सिर्फ खाओ, जब पीना हो तो सिर्फ पियो; जब काम करना हो तो सिर्फ काम करो, जब खेलना हो तो सिर्फ खेलो। यह सब तो छोटे दर्जे में ही सिखा दिया जाता है। तुम इतना भी नहीं जानते हो ! लो, चुपचाप यह दूसरा ग्लास पियो। अपना सिद्धान्त तो यही रहा, एक वक्त पर एक काम...।"

सिद्धान्त !

पापा सिद्धान्त की बात करते हैं !

जो कुछ आदत बन गया, उनके साथ ऐसा जुड़ गया कि छुटाना मुश्किल हो गया, उसीको सिद्धान्त कह दिया। शायद यह सभीके साथ हो। किसी सच बोलनेवाले को झूठ बोलना मुश्किल लगा होगा। जबान लड़खड़ा गई होगी। चेहरा लाल हो गया होगा। आगे का शब्द पीछे और पीछे का आगे निकलने लगा होगा। तब उसने सच बात कहने का सिद्धांत निकाला होगा। पर शायद ऐसा न हो। झूठ बोलकर, बहुत कुछ गंवाकर, सच बोलने की अक्षमता से दबकर, किसीने अपनी ही हीनता

की प्रताड़ना में शायद सत्य के सिद्धान्त का सहारा लिया होगा।

पर ऐसी बातें मेरे मन में क्यों आ रही हैं, बीमारों के से खयाल ? मेरा मन बीमार है। पापा को यों हंसता-बोलता देखकर मैं बीमारों की तरह क्यों सोचने लगती हूं ? पापा बहुत अच्छे हैं ! वे सिद्धान्तों की कभी-कभी झूठी दुहाई देते हैं। कभी-कभी उनके अपने ही सिद्धान्त और रहन-सहन में फर्क दिखता है। तो उसीसे क्या हुआ ? यह तो सभीके साथ होता है। सिद्धान्त बना लेने से ही क्या होता है, वह मशीन की तरह तो काम करता नहीं कि उसकी बंधी हुई पद्धति में जिन्दगी को बांधकर चला दिया जाए। वह तो मरीज़ों की पहियेदार कुर्सी है, उसे अपने ही हाथों अपने ही मन की दिशा में चलाना होता है। सिर्फ उसपर बैठे होने का ही संतोष मिलता है। फिर पापा का क्या कसूर। सिद्धान्तों के सहारे रहता ही कौन है ? सिद्धान्त तो खुद ही हमारे रहने के सहारे रहते हैं। सभी अपनी आदतों के, संस्कारों के गुलाम हैं। उन्हींके सहारे लोग जो कुछ बार-बार करते हैं, उसीको अपना सिद्धान्त बना देते हैं। पापा ही तो कहते हैं, हमारी बातचीत से व्याकरण निकलती है। हमारे रहन-सहन से सिद्धान्त निकलते हैं। पापा जब खाते हैं तब खाते हैं। जब पीते हैं तब पीते हैं। सचमुच ही यह कितना महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है। जब खेलते हैं तब सिर्फ खेलते हैं। काम करते हैं तो सिर्फ काम करते हैं।

पड़ोस के कमरे में प्रभा बिस्तर पर लेट गई थी। इस वक्त उसके चुपचाप सोचने में एक शून्यता-सी, शांति-सी थी। कोई नया मज़ाक, व्यंग्य, तीखापन, थकान, सब आपस में मिलकर अपना ज़हर खो चुके थे। बगल के कमरे में फिर ठहाके लगे। फिलासफर विनायक ने कोई नया मज़ाक किया होगा !

ये लोग एक-दूसरे के साथ मिलते ही पीने क्यों लगते हैं ? बिना

पिए हुए इन्हें आपस में बैठना पड़े तो ये क्या करेंगे ? ताश भी छीन लिए जाएं ? तो क्या ये सचमुच ही जमुहाने लगेंगे। इतने दोस्त हैं एक-दूसरे के, पर एक-दूसरे को मन की स्वाभाविक अवस्था में सह क्यों नहीं पाते ? क्या हो गया है इन्हें ?

आदत ? सिद्धान्त ? शायद इन्होंने सिद्धान्त बना लिया है कि जब तक खूब पी नहीं लेंगे, एक-दूसरे से प्यार से बोलेंगे नहीं। एक-दूसरे के दिमाग की तारीफ तभी करेंगे जब इनका दिमाग काम करना बन्द कर देगा।

फिलासफर विनायक अपनी विकृत आवाज में कहता जा रहा था, "प्यारे भाइयो, यह भी कोई बात हुई ! चीज नहीं, और कोई चिड़िया भी नहीं। मैंने किसी पुरानी किताब में पढ़ा था, इस तरफ काजें, तीतर बटेर—ये सब बहुतायत से पाए जाते हैं। कोई कह सकता है कि मैंने गलत पढ़ा था ? भाइयो, अभी स्टेशन से आते हुए 'कें-कें' की आवाजें तुम्हारे कानों में पड़ी थीं या नहीं ? वह कोई भेड़िया या शेर नहीं था। वह उसी चिड़िया की आवाज थी जिसे हम-आप काजें कहते हैं। वे चिड़ियां इस इलाके में हैं। आर० के० यह नहीं कह सकता कि वह हमारे लिए शिकार करने गया पर उसको शिकार मिला ही नहीं।"

रजनीकांत हंसते हुए बोले, "परमात्मा तुम्हारी आत्मा को शान्ति दे।"

फिलासफर ने भर्राई आवाज में कहा, "परमात्मा से मुझे कोई शिकायत नहीं। वह तुम जैसों की आत्मा को भी शान्ति दे सकता है। मुझे शिकायत तो तुम जैसे आदमियों से है, जो मुझे कभी शान्ति नहीं लेने देते। तुम्हें मालूम है, आज यहां आने के लिए मैंने कितना बड़ा

त्याग किया है ? तुम्हें मालूम है जी० जी० ? तुम्हें मालूम है गंगाधर ? ठीक, कोई नहीं जानता। मैंने आज दुर्गादास के यहां का डिनर ठुकरा दिया है। माइण्ड, दुर्गादास का डिनर। वह भी शादी की खुशी में। सिर्फ बारह दोस्तों के लिए। सोच लो आर० के०, वह डिनर कैसा होता ?"

गंगाधर की भौंहें सिकुड़ गईं। मत्थे पर बल पड़ गए। व्हिस्की के घूंट को उसने गले के नीचे इस तरह से उतारा जैसे वह कुछ कड़ुवा पड़ गया हो। पूछा, "दुर्गादास की शादी ? क्या कहते हो विनायक ? अभी महीनाभर ही तो हुआ जब उसकी पत्नी का देहान्त हुआ था।"

विनायक ने एक आश्चर्यपूर्ण दृष्टि अपने साथियों पर डाली"। ऐसा भाव दिखाया जैसे उनकी बचकानी बुद्धि पर खेद प्रकट कर रहा हो और सार्वजनिक सभावाले लहजे ही में बोलता गया, "भाइयो, किसी संत ने कहा है, 'जीवन के दिन चारि दिना रे।' किसी पुरानी किताब में भी लिखा है, 'विद्युच्चंल जीवितम्' यानी जैसा कि तुम अब तक समझ गए होगे, जिन्दगी बिजली की तरह चलायमान है। इन बातों से यह बिलकुल साबित हो जाता है दुनिया फानी है, जिन्दगी चंदरोजा है। तो बताओ भाइयो, दुर्गादास ने अगर यह बात तुमसे पहले समझ ली तो इसमें नाक सिकोड़ने की क्या बात है ? वह भी अधेड़ उम्र का आदमी है, ज्यादा दिन जीना नहीं है। इसीलिए इस काम में उसने इतनी जल्दी की है। पुरानी किताबों में भी लिखा है कि धर्म का काम करने में ऐसी ही जल्दी करो जैसे मौत तुम्हारे बाल पकड़कर अपनी ओर खींच रही हो। आर० के०, तुम इतने बड़े इंजीनियर हो। खुद देखो, मार्च का महीना आनेवाला हो, बजट का रुपया लैप्स हो रहा हो तब कितनी फुर्ती से टेण्डर का नोटिस छपाकर ठेके की मंजूरी देकर तुम काम को पूरा करा डालते हो। इसी तरह इस उम्र में बीवी के मरने के पन्द्रह दिन बाद ही दुर्गादास ने भी इश्तहार छपवा दिया। सात दिन बाद सबसे ज्यादा

फेवरेबुल क्वोटेशन वाला रिश्ता मंजूर कर लिया और उसके सात दिन बाद ही शादी कर ली। अब उसे कोई डर नहीं। अगर आज से सात दिन बाद दुर्गादास मर भी जाए तो लोग यह तो न कहेंगे कि उसके नाम को कोई रोनेवाला भी नहीं।"

रजनीकांत एक फीकी हंसी हंसे। गंगाधर ने कुछ सोचते हुए भौहें सिकोड़ीं। जी० जी० ने कहा, "कितने शर्म की बात है।"

विनायक ने इस बार सार्वजनिक सभावाली पद्धति छोड़कर बातचीत के लहजे में कहा, "नहीं जी० जी०, तुमने वकालत तो पढ़ी है पर धर्मशास्त्र या समाजशास्त्र नहीं पढ़ा। शादी करने में कोई शर्म की बात नहीं है। एक बीवी के मरने पर इतनी जल्दी शादी करना भी अब बुरा नहीं माना जाता। इस विषय पर इतना लिखा-पढ़ा जा चुका है कि इसका बुरा मानना अब फैशन के पुरानेपन तक में नहीं शुमार किया जाता, इसे अब बेवकूफी माना जाता है। अब तो सभी जानते हैं कि एक पत्नी के मरते ही दूसरी शादी करने में उसकी कितनी इज्जत है। साबित हो जाता है कि जिस विवाहित जीवन का दुर्गादास आदी बन गया था, उसके बिना वह एक दिन भी नहीं रह सकता।"

रजनीकान्त इस बार फीकी हंसी भी नहीं हंस पाए। उनके होंठ दोनों किनारों की ओर कुछ खिच गए। विनायक ने देखा, इसीलिए उसने हंसकर कहा, "मुझे अफसोस है आर० के०। मैं तुम्हें आज से बीस साल पहले जानता होता तो तुम्हारी यह हालत न होती। मैं तुम्हारी भी शादी कराकर छोड़ता। तुम्हारी जिन्दगी बरबाद होने से बचा लेता।"

बातचीत गलत रास्ते पर जा रही है। पेट में दो बूंद व्हिस्की जाते ही विनायक सब कुछ भूल जाता है। शालीनता पर कभी उसका विश्वास रहा ही नहीं। बेचारे रजनीकांत। तब तो वे केवल तीस साल के रहे होंगे। पर अपनी दिवंगता पत्नी की स्मृति के नाम पर उन्होंने जो उजड़

रहा था उसे उजड़ जाने दिया। आज तक उन्होंने कभी अपना दर्द किसीसे नहीं बताया। उसे अकेले झेल लिया। उन्हींकी भावनाओं का यह मजाक उड़ा रहा है!

जी० जी० को सचमुच ही ये बातें बुरी मालूम दीं। उसने विनायक को झिड़ककर कहा, "क्यों विनायक, रजनीकांत जी को क्यों परेशान करते हो? तुम्हारे पास बातचीत के कोई और विषय नहीं हैं?"

विनायक और जोर से हंसा। उसने फिर सार्वजनिक सभावाली पद्धति अपनाते हुए कहा, "तो आफेंस, प्यारे भाइयो, विनायक को तो विषय घेरे ही रहते हैं। अगर बीवी की बात तुम्हें पसन्द नहीं है तो वेश्याओं की बात चला सकता हूं। यह भी वैसा ही थीम है।"

अब वह इधर-उधर की बकझक करेगा। फिर भी कोई बात नहीं। खतरेवाली बातें एक किनारे छूट गई हैं। बकने दो वेश्याओं के बारे में। जी० जी० ने संतोष की सांस ली।

विनायक कहता गया, "बीवी के न रहने पर वेश्याएं भी बड़ा सहारा देती हैं। पुराने लोग इन बातों को समझते थे। इसीलिए मैं पुरानी संस्कृति को इतना महत्त्व देता हूं। उसमें कॉमनसेंस की सभी बातों को इतने कायदे से समझाया गया है कि हरेक आदमी उन्हें अनकॉमन समझकर पकड़ने दौड़ता है। यानी, सत्तू को हार्लिक्स बना दिया गया है। यही है हमारी एन्शेंट कल्चर। तो भाइयो, अपने विषय से मैं कुछ दूर चला गया था, वैसे तो पब्लिक स्पीकर होने के नाते यह मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है कि मैं अपने विषय से दूर रहकर भी घंटों बोलता रहूं। फिर भी, बात वेश्याओं से चली थी। उनकी हालत आजकल खराब है। पेशे की हैसियत से यह एक घटिया काम है। इसमें अब कुछ भी नहीं है। जी० जी०, तुम लोग रोते हो कि मुकदमेबाजी कम हो गई है, प्रोफेशन में बड़ी भीड़-भाड़ है; कोई समझदार युवक जल्दी-जल्दी वकालत में

आना नहीं चाहता। बिलकुल यही हालत इधर भी है। कोई समझदार औरत अब जल्दी-जल्दी वेश्या नहीं बनती। आज से तीस साल पहले की कहानियों तक में यही हुआ करता था। किसी औरत को उसके प्रेमी ने धोखा दिया नहीं कि वह वेश्या बन गई। पर आज के कहानीकार भी समझते हैं कि ऐसी औरत अब पढ़-लिखकर कोई नौकरी कर लेती है। ठीक वैसे ही, जैसे आज का पढ़ा-लिखा आदमी तुम्हारे पेशे में जाने के मुकाबले राजनीति में जाना ज्यादा पसन्द करता है। सभी अब तात्कालिक लाभ की बात छोड़कर अपने भविष्य को देखते हैं।"

गंगाधर को यह सब सुनना अच्छा लग रहा था। बोला, "वैरी गुड, अच्छी रफ्तार है। बढ़े चलो, फिलासफर।"

जी० जी० के चेहरे पर मुस्कान लौट आई थी। रजनीकांत के मुंह पर खिची हुई रेखाएं ढीली पड़ गई थीं। विनायक कहता रहा, "इधर हम लोगों के ये हाल हैं कि वेश्याओं का तिरस्कार करते हैं। उन्हें पुरानी संस्कृति का कलंक मानते हैं। बुजुर्गों की बात भूल गए हैं। उनसे संबंध रखने को दुराचार समझने लगे हैं। उनके मुकाबले किसी मित्र की बीवी से सीधा संबंध रखने की कोशिश करते हैं। मैं मानता हूं कि यह बात भी किसी हद तक समझ में आती है। इससे आपके जीवन में नवीनता आती है, थकान और घुटन कम होती है, अपनी बेसिक वाइफ को छोड़कर किसी दूसरे की पत्नी को आप अपनी ओर खींच सकते हैं, यह समझकर आपको आत्मतोष मिलता है।..."

रजनीकांत के कंधे हिले। उन्होंने एक तीखी-सी निगाह विनायक पर डाली। वह कहता गया, "अपने बारे में आदर की भावना पैदा होती है। और सबसे बड़ी बात कि यह लेन-देन पैसे का नहीं, केवल भावुकता का है। यानी पैसा बचता है। पर भाइयो, सोचो, क्या इसी सबसे, अपने सुख के लिए, या पैसे बचाने के लालच में पर-स्त्री पर कुदृष्टि डालना

उचित है ? साथियो, यह पाप है। इससे समाज की व्यवस्था हिल जाती है। विवाह का बंधन, जिसे समझदार बुज़ुर्गों ने इतनी गलतियों और परीक्षाओं के बाद निकाला, एक मखौल की बात बन जाता है। इससे अच्छा तो यही रहता है कि लोग वेश्याओं का आदर करें, उन्हें अपनाएं। समाज में फैले हुए भ्रष्टाचार के कारण उनको आर्थिक संकट बुरी तरह से घेरे हुए है। उनके इस संकट को दूर करना तुम्हारा ही काम है। इनका हाल वैसा ही है जैसा कि सिटी-बसें चल जाने के बाद रिक्शेवालों का हुआ है। मैं रिक्शेवालों की भी हालत समझता हूं। इसीलिए जब मेरी कार ठीक नहीं होती तो बस पर नहीं, रिक्शे ही पर यूनिवर्सिटी जाता हूं।"

जी० जी० ने हंसते हुए कहा, "तुम सब कुछ कर सकते हो।"

विनायक ने अब तक यह ग्लास भी खाली कर दिया था। उसकी आवाज़ थर्राने लगी थी पर शब्द कुछ तेजी से निकल रहे थे। जी० जी० की यह बात उसने अनसुनी कर दी और अचानक रजनीकांत की ओर देखकर उत्साह के साथ कहने लगा, "वैसे ही मिस्टर रजनीकांत, बसों के मुकाबले तुम भी रिक्शे का तिरस्कार मत करो। देखो कि रिक्शेवालों की हालत क्या है। यह एक सोशियलॉजिकल प्राब्लम है। और सच बात तो यह है कि एक पालतू वेश्या रख लेने से सिर्फ उसीका उद्धार न होगा, तुम्हारा भी भला होगा। उसके संबंध इतने साफ होते हैं कि उनसे तुम्हारी पत्नी की स्मृति पर भी कोई आघात नहीं पहुंचेगा। मौलिक पत्नियों की दुश्मन होती हैं मित्रों की पत्नियां, सोसायटी गर्ल्स, ये सब; वेश्याएं नहीं। वह तो तुम्हारे जीवन में आकर भी वेश्या ही रहेगी। पर यह बात किसी दूसरे की पत्नी में, किसी क्लब-मेट में, स्कूल-मिस्ट्रेस, नर्स, डाक्टर वगैरह किसीमें भी नहीं मिलेगी। उनमें से कोई भी तुम्हारे जीवन में आ गई तो वह तुम्हारी भावुकता से खेलेगी, तुम्हारे मन को

चारों ओर से छा लेगी और साथ ही साथ यह स्मृतिवाली पोटली, जिसे तुम बहुत संभालकर रखे हो, धीरे से उठाकर चल देगी और सड़क के किनारे किसी डस्टबिन में फेंक देगी। तुम बुरा मान रहे हो पर मेरी बात बिलकुल सच है, वेश्या से बढ़कर पुरानी स्मृतियों को सचेत रखने-वाली कोई मशीन अभी तक ईजाद ही नहीं हुई। जल्दी करो मिस्टर रजनीकांत, ड्राइवर से बोलो, कार स्टार्ट करे, टाइम बहुत कम है, ज़िंदगी सिर्फ दो दिन की है!…"

रजनीकांत कुर्सी से उठकर खड़े हो गए थे। उनका चेहरा लाल हो गया था। रुक-रुककर, बड़ी ही भीर गंपर भर्राई आवाज़ में बोले, "विनायक, मुझे पता नहीं था कि तुम यह सब भी बक सकते हो! मुझे अफसोस है। ठीक है, कसूर मेरा ही है!"

विनायक थोड़ी देर के लिए अप्रतिभ हुआ। फिर उसने जल्दी-जल्दी पलकें भांजीं जैसे नशे का गुबार दूर कर रहा हो। फिर उसके चेहरे पर विस्मयजनित हास्य की रेखाएं एकदम से फूट पड़ीं। ज़ोर से उसने हंसकर बोला, "अरे, आर० के०, यह तो मजाक था, ओह! समझा, तुम्हें नशा चढ़ गया है!"

क्रोध, जिसे शिष्टता की मांग खींच-खींचकर दबा रही थी, उनके चेहरे को विकृत बना चुका था। वे बिना कुछ कहे बगल के कमरे में चले गए। परेशानी के साथ गंगाधर भी उनके पीछे गया।

विनायक और जी० जी० अपनी-अपनी जगहों पर चुपचाप बैठे रहे। विनायक के चेहरे की उन्मुक्त हंसी खत्म हो चुकी थी। उसकी जगह शराबियों की झेंपी हुई, हारी हुई मुस्कान किसी थकी हुई वेश्या की ही तरह उसके होंठों पर अटकी हुई थी।

डाकबंगले से कुछ ही दूरी पर बना हुआ एक शेड। दो-चार आराम-कुर्सियां एक ओर डाली गई थीं। फर्श पर एक पुरानी दरी बिछा दी गई थी। गांववाले उसीपर आकर-आकर बैठने लगे।

दिन-भर सबने सब तरह के काम किए हैं और अब यहां गाने के लिए इकट्ठा हुए हैं।

रामलाल सुतली बटता रहा। सन के उलझे हुए तारों का एक छोटा-सा गोला बनाकर उसे बगल में दबाए हुए, गांव की एक गली से दूसरी गली में घूमता। हाथ में लकड़ी का चार कोनेवाला एक लट्टू, बीच में लकड़ी की छोटी-सी डंडी लगी हुई। किसी तकुली का परिवर्तित और परिवर्द्धित संस्करण। रामलाल का यही काम है। सुबह से ही तैयार होकर, गुड़ खाकर, एक लोटा पानी पीकर, हाथ में तकुली और बगल में सन का गोला लिए हुए पूरे गांव का चक्कर लगाता है। बात-बात पर कहता है, "तकुली पर सूत कातने से गांधी बाबा ने सुराज ले लिया है। इतना मोटा सन कातने से हमें रामराज मिलेगा।" पर उसके रामराज के एक दिन की कीमत चार आना है। दिन-भर में जितनी सुतली निकलती है, उसकी रस्सियां बनाता है। इतवार और बुधवार को लगने-वाले बाजार में जाकर बेच देता है। भूखों नहीं मरता। इसी पुरुषार्थ के सहारे रामराज लाने का मजाक कर सकता है। हंसने-हंसाने के लिए बुरा नहीं। पर चाहो कि साथ बैठ जाए, एक चिलम फूंक ले, तो उसके खिलाफ सन्त लोग पहले ही कह गए हैं, "रमता जोगी, बहता पानी।" सबेरे पेट में गुड़ डालकर और शाम को ज्वार की रोटियां गले के नीचे उतारकर रामलाल बिरहा गाता है, कान पर हाथ रखकर। यहां गाएगा तो आवाज ढाक के जंगलों को भेदती हुई मील-भर दूर परमाई की बाग में जाकर गूंजेगी। आसपास के लोग कान उठाकर सुनेंगे : रामलाल बिरहा गा रहा है। कहेंगे, "बेशरम। तन में नहीं लत्ता, पान खायं

अलबत्ता !"

दरी के ऊपर घसीटे बैठा हुआ है। बनमानुस-सा। इसे देख लें तो अबामिनेबुल स्नोमैन के बारे में होनेवाली सब शंकाएं समाप्त हो जाएं। गांव के पश्चिमी ओर झील के किनारे, दो-चार जो ताड़-खजूर के पेड़ हैं, उन्हींके पास उसका पौन बीघे का खेत है। घसीटे का और कोई नहीं, न कोई सगा-सम्बन्धी, न इस खेत को छोड़कर कोई सम्पत्ति ही है। उसी खेत के किनारे एक जूते के नाल की शक्ल की झोपड़ी पड़ी है। ईख के पुराने सूखे पत्तों का एक छप्पर है। उसीको गोलाकार खड़ा करके बीच में दो-एक लकड़ियों को जमीन पर टिकाकर गिरने से बचा लिया गया है। एक ओर खर-पतवार जड़कर उसपर मिट्टी पोत दी है। एक ओर झांखरों का टट्र है जिसे खोलकर कीड़ों की तरह घसीटे अन्दर रेंग जाया करता है। दाढ़ी-मूंछ और सर के बाल बढ़े हुए और रूखे। आंखों के ऊपर-नीचे कुछ सूजन-सी है। दमे का मरीज़ है। झोपड़ी के अन्दर पड़ा-पड़ा गले और नाक के सहारे ऐसी-ऐसी आवाजें निकालता है कि अंधेरे-उजेले में लड़के उस तरफ जाते हुए घबराते हैं। तम्बाकू पीते हुए जब वह खांसता है तो लगता है, किसी खुरदरे पत्थर पर टीन की भारी संदूक को खिसका दिया गया है। झोपड़ी के बाहर एक भैंसा बंधा रहता है, उसी जैसा बूढ़ा। देखते ही जोर की सांस लेता है। सर हिलाकर मारने दौड़ता है। दुबला हो गया है पर काले चेहरे के भीतर से चमकती हुई आंखों में खून-सा दीख पड़ता है। उसे देखने से समझ में आ जाता है, क्यों यमराज ने इसीके किसी पूर्व पुरुष को अपना वाहन बनाया था। उसीके सहारे घसीटे पौन बीघे के खेत से अपनी जीविका चलाता है। खेती, दमा, अकेलापन, बनमानुसों और प्रेतों की समकक्षता, यही उसकी जिन्दगी है। वही घसीटे आज इस सभा में आया हुआ है। किसीका कहना है कि वह गाता भी है।

बनवारी अहीर भी बैठा हुआ है। पहले जो कुछ भी रहा हो, अब चेहरे पर खोखलापन उभर आया है—बड़ी-बड़ी बिच्छू के डंक सरीखी, उमेठी हुई मूंछों के बावजूद। लगभग छः फुट लम्बा शरीर, भारी चेहरा, छोटा मत्था। छोटी-छोटी आंखें, गड्ढों के भीतर से किसी अस्वाभाविक चमक के साथ झांकती हुई। गालों की हड्डियां उभरी हुई। सिर्फ मूंछों के कारण चेहरे पर पुरानी उग्रता की कुछ निशानी बची हुई है, नहीं तो यह किसी भुखमरे, अधपनपे गरीब का चेहरा है। बनवारी का कभी बड़ा नाम था। लाठी के सहारे वह दस-दस हाथ ऊंची दीवारें कूद जाता था। पेशेवर लठैत था। आधी उमर फौजदारियों, बलवों, अदालतों और जेल की चहारदीवारियों में बीती, पर उसके बाद जो कुछ हुआ उससे गांव के कई लोगों में धर्म के प्रति फिर से आस्था पैदा हो गई। बनवारी के आधे अंग को लकवा मार गया। रामनरेश के घर की फौजदारी में। पड़ोस के मकान पर कब्जा किया था। दूसरी फरीकवाले मैदान छोड़ चुके थे। रामनरेश दस साल की मुकदमेबाजी में बार-बार हारकर आज पहली बार जीता था। आकर बनवारी के गले से लिपट गया। पागल सियार की तरह आसमान की ओर सर उठाकर एक लम्बी ललकार छोड़ता हुआ बनवारी की लाठी की तारीफ करने लगा। तभी न जाने क्या हुआ, बनवारी लड़खड़ाकर जमीन पर गिर पड़ा। पीड़ा और असमर्थता के मारे उसकी आंखें फैल गईं। कुछ दिनों बाद बनवारी की लाठी बिना तेल के रूखी और काली पड़ गई। उसमें घुन लगने लगा। बनवारी को लकवा मार गया। अब वह एक मोटी बैसाखी के सहारे लंगड़ाता हुआ गांव के निरर्थक चक्कर लगाता है। जिस किसीके चबूतरे पर बैठकर तम्बाकू पी लेता है। उसकी मूंछें उसके अतीत को उसके वर्तमान में खींचने की निरर्थक चेष्टा करती हैं। वर्तमान उसके साथ लंगड़ाकर चलता है। भविष्य आंख की अंधेरी गुफाओं से

अनिश्चय के साथ झांकता है। यह सब है, फिर भी बनवारी होली और धमार गाता है। ढोलक और मजीरे के ऊपर उसकी स्पष्ट, ऊंची, कुछ मीठी, कुछ कड़ी आवाज़ चारों ओर फैलकर थोड़ी देर के लिए ग्राम-संगीत की सरल स्वच्छन्दता को अपने में समेट लेती है।

बनवारी शेड से कुछ दूर हटकर ज़मीन पर बैठा हुआ है। उसीके पास बहरैची चीथड़ों के एक गन्दे-से गेंद को जलाकर गांजा सुलगा रहा है। इस वक़्त बहरैची हंस रहा है। पर इस तरह वह बहुत कम हंसता है। पिछले साल-भर से तो किसीने शायद उसे हंसते देखा ही नहीं। उसके आठ-दस बीघे खेत थे। बैलों की जोड़ी थी, बैलगाड़ी थी, दुधार भैंस थी। घर का अकेला मर्द, घर में बीवी को संग्रहणी का मर्ज़। पांच छोटे-छोटे बच्चे। उन्हें देखना, बीबी की देखभाल करना, और फिर अपने बूते पर अकेले खेती करना। एक बार कातिक के महीने में उसे मलेरिया ने धर दबाया। खेतों की नमी उखड़ी जा रही थी। बैल खूंटे पर बंधे-बंधे कमज़ोर हुए जा रहे थे। जोतने-बोने के दिन निकले जा रहे थे। उसने खेत बटाई पर उठा दिए। उसके बाद पुराने लम्बदार लालतासिंह की पुरानी दुश्मनी बीच में आ गई। बटाई के काश्तकारों की दरख्वास्त। पटवारी और कानूनगो की साजिश। लालतासिंह का दबाव। तहसील के चक्कर। बहरैची की समझ में और कुछ नहीं आया। यही समझा कि ज़मीन उसकी नहीं रही। वह उन्हीं शिकमी किसानों के नाम लिख गई जिन्होंने उसके खेत उस साल कातिक के महीने में जोत लिए थे। बड़े अभिमान से किसी नेता ने समझाया, भूमि उसीकी है जो उसपर हल चलाता है। बहरैची इस सिद्धान्त को और इस सिद्धान्त की नींव पर बने हुए कानून को सुनता रहा। हाथ-पांव जैसे सुन्न हो गए हों। आंखें फटी-सी रह गईं। मुंह खुला रह गया। कुछ जवाब नहीं देते बना। आसपास के गांवों में चार-चार सौ बीघे की सीरें पुराने ज़मींदारों

के कब्जे में चली आ रही हैं। जिनके नाम ज़मीन लिखी हुई है उन्हें पता भी नहीं कि वह कहां है, उसे सींचने का पानी कहां से आता है, उसमें धान उगता है कि गेहूं। पर उनके लिए ये सिद्धान्त और कानून की किताबें वैसी ही रह जाती हैं जैसे किसी पहलवान के शरीर पर किसी हंसमुख बच्चे के मुक्के, जो खेल ही खेल में उसपर बरसते हैं, जिन्हें वह मुस्कराते हुए स्वीकार करता है। बहरैची ने अदालतों के चक्कर लगाए, शत्रु को मारने के लिए चंडी का अनुष्ठान कराया, दाढ़ी-मूंछ बढ़ा ली, पर पूरा साल वैसे ही बीत गया। मजदूरी करके किसी प्रकार दिन काटे। इस साल किसी एक मुकदमे की अपील में जीत हुई है। दो बीघा खेत वापस आया है। बहरैची की मूंछ फिर पुरानी लम्बाई पर आ रही है। दाढ़ी मुंड़ गई है। बुझे हुए मन से उन्हीं दो बीघों पर अपने जर्जर संसार को चलाने की कोशिश कर रहा है। और बहरैची भी गाने के लिए आया है।

सिर्फ रामलाल, घसीटे, बनवारी और बहरैची ही की बात नहीं, राधे के खलिहान में अभी परसों आग लगी, अगहनी धान की गीली फसल सुलगकर रह गई। बेचू की घरवाली को किसी सांड़ ने सींगों पर उठाकर दस हाथ की दूरी पर फेंक दिया। टूटी हुई कमर लिए वह चार दिन से चारपाई पर पड़ी हुई कराह रही है। सभीके साथ अपने-अपने दुःख हैं, अपनी-अपनी निराशाएं हैं। केवल रामचरन को लोग सुखी समझते हैं। उसका घर भरा-पुरा है। लड़के हैं, उनकी पत्नियां हैं, खेत-पात हैं। जानवर हैं। बस मन में एक कांटा कई साल पहले से चुभा हुआ है। उसकी बीवी एक रात कहीं चली गई। फिर उसका पता नहीं चला। वह जानता है कि किसके साथ गई है। कहां गई है, यही नहीं जानता। न जाने कितने दिनों तक जंजीर में बंधे हुए हाथी की तरह वह कसमसाता रहा। अकेले में रोता रहा। अपने-आपको कोसता रहा है। इतने साल

बीत गए हैं पर जब-जब जाड़े की ठंडी हवाएं हरहराती हुई बहती हैं और पाला गिरता है और पड़ोस के बाग में चमगादड़ चीखते हैं, उसे लगता है कि वह कांटा कसक रहा है, पुराने घाव में चुभन-सी होती है और सब समझते हैं कि वह एक सम्पन्न किसान है और ऐसे सुखी आदमी के नेतृत्व में इन अपंग जर्जर खेतिहारों और मजदूरों का समुदाय गाने के लिए इकट्ठा हुआ है।

चिलम, गांजा, बीड़ी, हंसी-मजाक, कुछ गीत। मूर्छा की बर्फीली झील पर सूरज की कमजोर किरणें तैरती हैं। सतह के नीचे कुछ पिघलता-सा है। कुछ बुलबुले उठते हैं। फिर काले बादल, कुहरा, अंधेरा और बर्फीली चट्टान-सी पानी की चिकनी चादर......।

गीत शुरू हो गए हैं। प्रभा शेड के कोने में आरामकुर्सी पर बैठी है। वे अपने को भूलकर गा रहे हैं। इन गीतों की कल्पना से भी दूर एक रूपसी को सामने पाकर उनकी आवाज में एक नई खनक आ गई है।

वे गा रहे हैं। उनकी जिन्दगी के सूखे पत्ते जैसे पतझड़ की हवा में तिरछे होकर उड़ रहे हैं और उन्हींकी आंखों के सामने बरबादी के एक सुनहरे वातावरण की सृष्टि कर रहे हैं। गांव की जिन्दगी—जिसमें पतझड़ की पत्तियों का सुनहरापन है। काई की, सिवार की हरियाली है। बंधी हुई झीलों का, निस्तरंग तालाबों का पानी है। हवा बहती है, अमराइयों में अटककर ऊसर में फैलती है। नदियों के सुनसान कछारों में बालू को उकसाती है। मुर्झाई

हुई शान्ति है। मटमैली चमक है, आतंकित सलोनापन है। कमल के नीचे,कमल-नाल पर उभरे हुए कंटीले रोएं हैं। रेशमी घास के नीचे ऊबड़-खाबड़ धरती है। मासूम चिड़ियों के घोंसलों के आसपास सांपों के चक्कर हैं। सावन की जामुनी घटाएं, शरद की निष्कंप चांदनी, वनफूलों को छाया-वीथियों पर बिखेरता हुआ उन्मुक्त फागुनी वातास—इनमें महामारियों के विस्फोटक हैं।

ऐसी ही इन गीतों की कला है। यह व्याघातों की, बाधाओं की कविता है।

इस कविता को क्या कहा जाए जो जिन्दगी की छटपटाहट से अपने को संवारती-सिंगारती है, उसकी जीर्णता से अपने यौवन का रस खींचती है। घर के भीतर की प्रताड़ना, बाहर के संघर्ष और अपमान—इन सबमें मिठास भर देती है। जैसे किसी खंडहर की मुंडेर पर घास उग आई हो। बबूलों पर पीले फूल चटक रहे हों। अमरबेलि की कोमल बाहें कांटों को ढक रही हों, उन्हें अपने-आपमें समेट रही हों। जैसे पहाड़ी के नीचे बसे हुए किसी बौने गांव के ऊपर से, पश्चिमांगी सूर्य की किरणें छतों को छूती हुई निकल गई हों।

प्रभा ने धीरे से एक दबा हुआ, गहरा निश्वास छोड़ा और सजगता के साथ चारों ओर देखा।

पापा अभी तक नहीं आए। इस समय यह गाना जम गया है। उन्हें आना चाहिए। शायद उनके हाथों के ग्लास अभी खाली न हुए हों। किसी-को बुलाने भेजा जाए। या खुद ही बुला लें। वह कुर्सी से उठ खड़ी हुई। शेड की दो सीढ़ियां उतरकर लॉनों के बीच से जाते हुए एक पतले रास्ते से निकली, टार्च की रोशनी में गुलाब के फूल दिखे जो लॉन

के किनारे लगाए गए थे। मखमली रोशनी ने उनपर एक सलोनापन-सा बिखेर दिया। उसने सोचा, इन गीतों में बहुत कुछ मीठा है, पर उससे भी अधिक कहीं-कहीं कुछ गहन है, अपरिचित है। मन के ऊपर एक बोझ-सा उतरता आ रहा था। जो उबाता नहीं था, न दर्द करता था, कुछ भीतर ही भीतर दबाता-सा था। अब शेड से उतरने पर उसे लगा, सब कुछ वैसा ही है। कहीं कुछ बदला नहीं है। लॉन में अब भी वैसी ही हरियाली है। जैसे सबेरे इसपर टहला जाता है, अब भी टहला जा सकता है। गुलाब वैसे ही खिले हैं। जैसे सचमुच ही कहीं कुछ बदला नहीं है। डाकबंगले में रोशनी हो रही है। पापा और गंगाधर ऐण्ड कम्पनी अपने-आपको दबाकर, अपना पूरा रस खींचकर, अपने-आपको सुखी बना रही है।

वह पिछले बरामदे में पहुंची। यहीं से शेड का सामना पड़ता था। इस बरामदे में अंधेरा था। बीच के कमरे के दरवाजे बंद थे। शीशे से प्रकाश छनकर आ रहा था। वह दरवाजे पर धीरे से दस्तक देना चाहती थी, पर रुकी। एक ओर किनारे के कमरे की ओर देखा। जाली का दरवाजा बन्द था, लकड़ी का खुला। अन्दर पलंग पर पैर फैलाकर पीठ के सहारे पापा बैठे हैं। गंगाधर बिस्तर के किनारे उन्हीं-के पास बैठा है। प्रभा ने देखा, और उसी ओर मुड़ी। वे पलंग पर बैठे हैं, गाउन अस्त-व्यस्त हो रहा है। मत्थे पर बाल इस तरह लटक आए हैं कि वे थके-से दिखने लगे हैं। गंगाधर उनका कन्धा क्यों छू रहा है? दरवाजा खोलने के पहले प्रभा ठिठकी। गंगाधर कह रहा था, "पर यह तुम्हारा वहम है। विनायक रानी के बारे में कुछ नहीं जानता।"

रानी! मां! विनायक मेरी मां को कैसे जानता होगा? क्या बात है? प्रभा ने चौंककर सुना और सोचा।

पापा जैसे कोई रटी हुई बात दोहरा रहे, "नहीं गंगाधर, तुम

मुझे समझा क्यों रहे हो ? यह जान-बूझकर भी मेरा [illegible] हो तो भी कोई बात नहीं। बात बढ़ाने से फायदा क्या ?…"

गंगाधर वैसे ही समझा रहा है, "नहीं, नहीं, रजनी, [illegible] से नहीं तीन साल से जानते हो। यह तो हम [illegible] था। [illegible] सब तो हंसने के लिए था…।"

प्रभा दरवाजा खोलकर अन्दर घुसी। गंगाधर सीधा बैठ गया। पापा ने पैर सिकोड़ लिए हैं। बालों को हाथ से पीछे कर लिया है। चेहरे पर भी एक थका हुआ हाथ फेरते हैं। प्रभा ने सोचा। [illegible] से सब कुछ स्वाभाविक बन गया है।

"आओ, बेटी।" उन्होंने धीमी सहज आवाज में कहा।

"नहीं पापा, बैठूंगी नहीं। मैं तो सिर्फ बुलाने आई थी। सब लोग आ गए हैं। गाना शुरू भी हो गया है।"

पर इसी बीच में गाना बन्द हो गया था। बस बातचीत चल रही थी। प्रभा ने कहा, "अभी-अभी बंद किया है। वे तुम्हारी ही राह देख रहे हैं।"

उत्तर दिया गंगाधर ने, "तुम चलो बेटी, हम लोग थोड़ी देर में आते हैं।"

कुछ हंसकर प्रभा ने होंठ बिचकाए। गंगाधर हंसा। वह बोली, "पापा हमेशा ही ऐसा करते हैं। एक ही [illegible] में बार-बार [illegible]। आप लोग आनेवाले हैं यह जानकर भी इन गांववालों को बुला लिया था।"

रजनीकान्त मुस्कराए। बोले, "तुम चलो बेटी, हम सचमुच ही आ रहे हैं, मुश्किल से बीस मिनट।…"

उसी तरह मुस्कराते हुए प्रभा बाहर आ गई। जालीदार दरवाज़ा बन्द हो गया।

गाना भी बंद हो गया है। बातचीत कान में पड़ रही है, फिर भी सन्नाटा-सा है। मन पर फिर से कुछ बोझ-सा आ पड़ा है। मां की बात! पापा का अपमान!

तम्बाकू की अनभ्यस्त दुर्गन्ध हवा में घुल रही थी। प्रभा का मन एक अजीब-सी कड़ुवाहट से भर गया।

रजनीकांत और गंगाधर पलंग से उठ खड़े हुए थे। गंगाधर उसी बात को दूसरे रूप में दोहरा रहा था। "विश्वास मानो रजनी, जो कुछ हुआ, विनायक के बिना जाने ही हुआ है। हंसी की बात को बढ़ाने से तुम्हें क्या मिलेगा? चलो, वहीं वापस चलें। एक-एक राउण्ड और! फिर गाना सुनेंगे। तुम्हारे गंवार आर्टिस्ट बुरा मान रहे होंगे।"

रजनीकांत ने थकी हुई आवाज़ में कहा, "चलो।"

पर उनके चलने की ज़रूरत नहीं पड़ी। अन्दर का दरवाज़ा खुला और दूसरे कमरे से विनायक और जी० जी० उनके सामने आ गए। आते ही विनायक ने सर नीचा करके अत्यन्त विनम्रतापूर्ण आवाज़ में कहा, "मित्रो, मैंने पूरी बात पर फिर से विचार किया है और इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि नशे में तुम नहीं थे। मैं खुद ही नशे में था। इसलिए मैं अपने शब्द वापस लेता हूं। उन शब्दों ने यदि तुम्हारे मन को कोई चोट पहुंचाई हो तो उसे निकाल फेंको क्योंकि चोट को छिपाकर रखना स्वास्थ्य के लिए हानिकर है।"

जी० जी० और गंगाधर हंसने लगे थे। प्रोत्साहित होकर विनायक ने सिर को कुछ और नीचा किया और गिड़गिड़ाते हुए कहा, "मुझे माफ

करो, साथियो। मैं जीवन में अब कभी भी बीवियों और वेश्याओं के बारे में बात नहीं करूंगा।"

लाइलाज......।

प्रभा ने शेड में जाकर देखा, गीत बन्द है। बातचीत भी रुक गई है। एक अस्वाभाविक-सी खामोशी छाई है। घसीटे के गले की घुरघुराहट उसे तोड़ने की कोशिश करती है, पर सब कुछ दबा-दबा-सा जान पड़ता है। वह जाकर कुर्सी पर बैठ गई। ओवरसियर पास ही खड़ा था। उससे पूछा, "क्यों ?"

"कुछ नहीं सरकार। एकाध लोग चिलम-बीड़ी के लिए उठ गए हैं। बस दो मिनट में फिर से शुरू किए देते हैं।" इसके बाद ही उसने आवाज़ ऊंची करके वहीं से हुक्म दिया, "ए, ए, तुम लोग यह क्या कर रहे हो? चिलम-विलम सुलगानी हो तो इधर नहीं, उधर चौकीदार के क्वार्टर की तरफ़ जाओ।"

दो-तीन लोग कोड़ों से पिटे हुए, टांगों के बीच दुम दबाए कुत्तों की तरह जल्दी-जल्दी भागते हुए चौकीदार के क्वार्टर की ओर चले गए। ओवरसियर ने अपनी आंतरिक घृणा को बाहर फैलाते हुए कहा, "जंगली....!" इसके बाद अभ्यास से अपने-आप उठनेवाली एक वज़नदार गाली को गले ही में रोकते हुए उसने प्रभा से कहा, "सरकार लोगों को देहाती गाने सुनने की इल्लत है, इसलिए इन्हें पास बैठालना पड़ता है। नहीं तो सरकार, इन लोगों की तो यह हालत है कि यहां बात करते हैं तो मुंह की बदबू कोस-भर तक जाती है, और आवाज़ चार कोस।"

जो चार-छः आदमी सामने बैठे थे उनमें से एक ने ओवरसियर से

कहा, "ठीक बात है सरकार, हम लोग गंवार आदमी, कायदा-बेकायदा क्या समझें ? मगर सरकार, मर्द बच्चा की आवाज़ चार कोस तक चली गई तो कौन-सा हर्ज हो गया ?"

ओवरसियर को सरकार कहा गया था। जिन्हें वह खुद सरकार कहता है उन्हींके सामने उसे भी सरकार बना दिया जाए, इस मखमली बात से अपनी बात का काटा जाना उसे बिलकुल नहीं खला। हंसते हुए बोला, "यही तो गंवारपन है। तुम्हारी समझ में आ ही नहीं सकता कि धीरे बोलना चाहिए।"

वह आदमी अब सचमुच के गंवारपन पर उतर आया। ओवरसियर को छोड़कर उसने सीधे प्रभा से कहना शुरू किया, "मेम साहब, अब हमारी और साहब-इलाका की बात का आप ही तस्फिया कर दें। जैसे आप पंच परमेसुर हैं। आप ही बतावें कि जनाना की बोली जनाना जैसी होनी चाहिए कि नहीं ? औ, तब मर्द की बोली मर्द जैसी होनी चाहिए कि नहीं ?"

ओवरसियर ने उसे बीच में रोकना चाहा पर उसने अपनी बांह से अपने होंठों और मूंछों को तेजी से पोंछकर कहा, "नहीं सरकार, मूंड काट लिया जाए पर बात न काटी जाए। मेम साहब, आप ही तस्फिया करें। हमारे बाबा थे तो वे जनाना को नकफुसरी कहते थे। हमारी महतारी जब कभी घर के भीतर कुछ बोलती तो बाबा हंसते। कहते, नकफुसरी फुसुर-फुसुर कर रही है। क्या बात है ? तब हम लोग आकर कहते कि बाबा महतारी कहती हैं कि घर में रेंडी का तेल नहीं है। तब बाबा कहते कि नकफुसरी से कह देव कि आज दिया में कडुवा तेल जलाय लेवै। तो सरकार जनाना का धरम है कि फुसर-फुसर बात करै और मर्द बच्चा का धरम कि कड़क के बोलै। तिरछा-तिरछा चलै। हमारे बाबा थे और फिर थे हमारे बाप। यही जाड़े के दिन, कोल्हौर के

पास बैठ के जब बाप-पूत बातचीत करैं तो आधे गांव में लोग समझैं कि फौजदारी हो रही है। सब कहैं कि महाबीर और बंदीदीन कोल्हौर पर गए हैं तो गुड़ नहीं, बात के बताशा बनावैंगे।"

कहते-कहते अकस्मात् उत्साह में आकर वह ज़ोर से कहने लगा, "अरे मेम साहब, गांव में बोलैं तो यहां डाकबंगला तक गनगनाकर नगाड़ा जैसा बजता था। मर्द बच्चा की बात ठहरी मेम साहब। दरोगाजी चले जा रहे थे घोड़े पर कि हमारे बाबा सामने पड़ गए। बोले, ऐ महाबीर के बच्चे, तुम्हारे लड़के बंदीदीन की बड़ी शिकायत है। उसे समझा दो, ठीक से चले नहीं तो हवालात में बंद कर देंगे। तबैत चुराईट हो जाएगी। अरे मेम साहब, सुनते ही बाबा की भौंहें तन गईं, नैना रक्तबान ह्वै गए। लाठी को धरती पर टेककर जब उन्होंने जवाब दिया तो आपै समझ लें कि दरोगा का घोड़ा उछल के बीस हाथ पर खड़ा हो गया। बाबा ने मूंछ पर ताव देकर कहा कि सरकार कोई फिकिर की बात नहीं। बन्दीदीन भी मर्द बच्चा है। सात साल की काटकर फिर घर आ जाएगा। कोई नमक का ढेला नहीं है कि कोई उसे घोलकर पी जाएगा। अरे मेम साहब, दरोगा तो कोड़ा लेकर उतरना चाहें पर बात का रौब, घोड़ा ऐसा कड़बड़-कड़बड़ भागा है कि भागे राह नहीं मिली। धूल उड़ गई। जवार में बाबा का नाम हो गया...।"

वह और भी बोलता। बार-बार कड़ककर अभिनय के साथ वह अपने पूर्वजों की यशोगाथा सुनाने लगा था। पर ओवरसियर ने उसे पितृभक्ति की धार में डूबते-डूबते बचा लिया। बीच में ही डांटकर कहा, "ऐ, अब चुपचाप बैठो। बहुत बहक लिए।" उसे डर था कि अभिनय को और स्वाभाविक बनाने के लिए अब वह कुछ ऐसी भाषा का प्रयोग करने लगेगा जिसे प्रभा को सुनने में परेशानी हो जाएगी। यह सुनकर उस आदमी ने अपनी अधूरी बात को एक झेंप-भरी हंसी में बदल

दिया। वह हंसी थोड़ी देर बाद एक पिटी-पिटी-सी खामोशी में परिवर्तित हो गई।

प्रभा के मन को कुछ कष्ट-सा हुआ। उस झेंपी हुई हंसी में न जाने कितने युगों की असहायता और बेशर्मी एकसाथ मिल-जुलकर घुल-सी गई थी। उसने कहा, "अरे, तुम्हारे बाबा तो सचमुच ही बड़े बहादुर रहे होंगे।" फिर ओवरसियर की ओर देखकर बोली, "शुरू कराइए न अब। पापा भी आ ही रहे होंगे। वह आपका बसंत कहां है? आप ही तो कहते थे कि वह बहुत अच्छे भजन गाता है।"

ओवरसियर ने जरा रुकते हुए कहा, "हां सरकार, अभी यहीं तो था। देखिए बुलाए लेते हैं।" कहकर उसने सामने वैठे हुए लोगों से कहा, "तब तक तुम्हीं लोग कोई बिरहा-विरहा छेड़ो।" फिर कुछ परेशानी के साथ वह चलने को हुआ।

जिस आदमी को अभी उसने डांटकर चुप किया था, उसीने कहा, "अरे मेम साहब, साहब-इलाका तो बेमतलब परेशान हो रहे हैं। अब बसन्त नहीं आएगा।"

प्रभा ने आश्चर्य से पूछा, "क्यों?"

वह आदमी हंसने लगा। कुर्ते की बांह से मुंह को एक बार फिर से पोंछकर उसने कहा, "क्या बतावैं मेम साहब, बात यह है कि वह अब चमार नहीं रहा। उसका लड़का कुछ पढ़-लिख गया है न, इसलिए वह चमार नहीं, अपने को लम्बरदार समझने लगा है।"

प्रभा ने प्रश्न-भरी निगाह ओवरसियर की ओर उठाई। उसने जल्दी-जल्दी में, बात समाप्त करने के इरादे से कहा, "कोई खास बात नहीं सरकार। अभी-अभी यहीं आया था। चिलम-विलम के चक्कर में उठ गया है। मैं बुलाए लाता हूं।" उसके बाद ही अपने सामने बैठे हुए आदमी की आंखें देखकर उसने खुद ही जोड़ा, "कोई बात नहीं है सरकार,

मैं बुलाए लाता हूं। जाहिल तो है ही। तुनक गया होगा तो मान भी जाएगा।"

खम्भे की ओट से किसीने कहा, "जाहिल वह नहीं है। जाहिल आप खुद हैं। आपको शर्म आनी चाहिए।"

RAJINDER

प्रभा अपने कमरे में चुपचाप लेटी है। सिरहाने की ओर कोने में एक ऊंचे-से स्टैंड के ऊपर पेट्रोमैक्स धीमी भन्नाहट के साथ जल रहा है। क्रीम के रंग की रोशनी फैल रही है। वह चुपचाप लेटी है; आंखें किसी खुले हुए सचित्र साप्ताहिक पर हैं पर जिस चित्र को वह देख रही है वह पन्द्रह मिनट पहले का है।

बहुत दिन से उसका अपमान नहीं हुआ था। शायद कभी किसीने उसका अपमान किया ही नहीं। किया भी होगा तो बिना जाने हुए। चाय का प्याला पहले उसे न देकर किसी पुरुष को दे दिया होगा। उसके लिए कार का दरवाजा न खोला होगा। परदा न उठाया होगा। वह कमरे में आई होगी और कोई सोफे पर लेटा हुआ चुपचाप अखबार पढ़ता रहा होगा। पर इन अपमानों का निराकरण तिरस्कार की एक मुस्कान से हो जाता था। मूर्ख ! उन्हें मालूम नहीं कि वे क्या कर रहे हैं। नहीं ! प्रभा को याद नहीं कि उसका कभी अपमान हुआ होगा।

मगर बसन्त के लड़के ने सबके सामने इतनी बातें कह दीं। जब किसीका अपमान होता है, कोई किसीको डांटता है, तो इससे यही साबित होता है कि वह अपमानित होने के, डांट खाने ही के लायक है। व्यक्तित्व को इतना उभारो कि कोई तुमसे ओछी बात कह ही न पाए। प्रभा के ये विचार, जिन्हें वह कितनी बार कितने ही लोगों के सामने अभिमान के साथ प्रकट करती रही थी, उसीको कुरेदने लगे। क्या कमजोरी है

उसमें, जिसके सहारे उस किसान के लड़के को उससे इतनी बातें कहने की हिम्मत पड़ गई ?

"नहीं, मेरा बाप तुम्हारे सामने गाए, ऐसा नहीं होगा। हमारे दो बीघे के हरे-भरे खेत ! सामने से नहर बहती रही, पर उनमें एक बूंद भी पानी नहीं पहुंचा। लहलहाती हुई ईख की फसल लू में जलकर राख हो गई। इसीलिए न ओवरसियर साहब, कि मेरा बाप तुम्हारी पूजा नहीं कर सकता था ? नीचे के खेतों के लिए अलग से कुलाबा लगा दिया गया ? क्यों ? इन सबको मालूम है कि ऐसा क्यों हुआ।"

"आप उन मेम साहब को क्या इंजीनियरिंग समझा रहे हैं ? मुझे भी समझाइए। आज से तीन साल पहले जब कुलाबा मेरे खेतों के पास लगा था, तब मेरे खेत ऊंचे नहीं थे। आपके आते ही वे ऊंचाई में पड़ गए। मेरे बाप के पास बीस रुपये नहीं हैं, इसलिए खेत ऊंचाई पर हैं। आगे के खेत ज़मींदारों के हैं। इसीलिए वे नहर से नीचे पड़ जाते हैं। उनमें पानी पहुंच सकता है।"

"ठीक है ओवरसियर साहब, आप ठीक ही कहते हैं कि हम लोग जाहिल हैं। इसीलिए आप जब चाहें हमें रुलाया करते हैं और जब चाहें तब गाना भी सुन सकते हैं।"

लम्बा कद। लगभग बीस साल का नवयुवक। गोरा रंग। छोटे-छोटे बाल। कुछ गढ़े में धंसी हुई, पर आकर्षक आंखें। यह ओवरसियर इसी लायक है। सचमुच ही इसने बसन्त की खेती बरबाद कर दी होगी। यह शहर में पढ़ रहा है। नया-नया सोशलिज्म पढ़ा होगा, अधिकार छिनने पर अपमान का अनुभव करने लगा है। अच्छा है। इस ओवरसियर के लिए भी अच्छा ही है। प्रभा सोचती रही। इस प्रकार उसने इस उद्दण्डता को क्षमा कर दिया होता पर···" और मेम साहब, आप ? आपको ये लोकगीत बहुत अच्छे लगते हैं न ? आपने जेठ की तपन में

झुलसता हुआ ईख का खेत देखा है कभी ? उसीके सहारे एक पूरे परिवार का साल कटता। और वही फसल जल गई !

"आप ये गीत क्यों सुनना चाहती है ? हमारा कुछ भी तो आपको अच्छा नहीं लगता। तब हमारे ये गीत ही आपको क्यों अच्छे लगते हैं ?

"आप हमारे बारे में कुछ भी नहीं जानतीं। यह घसीटे बनमानुसों की तरह झोपड़ी में पड़ा रहता है। दमा में हांफता है। जानती हैं आप ? ये मंगरू, लालू, लोटन इनके घर दो-दो दिन के बाद चूल्हा जलता है। आप यह भी नहीं जानतीं ? सिर्फ आपको ये गीत अच्छे लगते हैं ?"

ग्राम-गीत। तिलमिलाती हुई हरियाली। जेठ का महीना और जलती हुई फसलें। प्रभा चौंकी।

"आप हमारा रोना नहीं सुन सकतीं। गाना ही क्यों सुनना चाहती हैं ?"

और जब गांववाले ही उसे ठेलते हुए, कुछ डांटते हुए, कुछ समझाते हुए, शेड से बाहर ले गए तो उसकी वह हंसी ! "मुझे ढकेलते क्यों हो ? मैं खुद ही जा रहा हूं। मेम साहब की खुशामद करो। घर पर रोओ और उनके सामने गाओ""। कहां यह सजधज और कहां ये गंवारों के···?"

अच्छा ही हुआ, पूरी बात कान में नहीं पड़ी। अर्धशिक्षित, मूर्ख ! क्या-क्या कह गया ! इतने लोगों के सामने ! शायद वह कुछ भी न कहता ! शायद ओवरसियर ही ने बात बनाने की चेष्टा में उसे इतना उकसा दिया।

प्रभा चुपचाप लेटी है। पूरी घटना ने उसे थका दिया है। वह उस गंवार किसान के लड़के की तरह सोचना चाहती है, पर नहीं सोच पाती। विक्षोभ अपने वज़न ही से थक गया है, पर कम नहीं हुआ है।

रुचि पर आक्षेप। संस्कृति पर, सभ्यता पर आक्षेप। कपड़ों पर

आक्षेप। उसने लिपस्टिक को क्यों छोड़ दिया ?

प्रभा को याद नहीं कि उसका कभी अपमान हुआ था। फिर भी उस रात...।

धुंधले, मटियाले पानी की धीमी बहनेवाली धार। न जाने किस तल से उछलकर कुछ रंगीन चमकदार, चंचल मछलियां सतह पर आती हैं, खेलती हैं और अतल में खो जाती हैं। अनजाने ही, थके हुए चेहरे पर एक हल्की-सी कोमलता उतरती है। विक्षोभ को जम्हाइयां आ रही हैं। लिपस्टिक ! शशिकान्त को अच्छी नहीं लगती थी। और वह कहता भी था। बालों की कोई भी सज्जा उसे पसन्द नहीं। पाउडर नहीं, लिपस्टिक नहीं, रूखे ओठ। इन्हींके लिए बच्चों की सी कातर चाह। गर्मियों के दिन, हलका पाउडर, सफेद साड़ियां, उड़ते हुए रूखे बाल। निश्छल उल्लसित हंसी। और वह रात। तीन साल पहले की एक रात। और वह मधुर अपमान। साड़ी का, ओठों का, लिपस्टिक का, हंसी का अपमान ! कितना गहरा, उकसानेवाला, उभारनेवाला, भुला देनेवाला अपमान !

वे पागलपन के दिन। किशोर वय की प्रौढ़ता। भद्र महिला होने का हास्यास्पद अहंकार। उपन्यासों की नायिकाओं के आदर्श, टाल्स्टाय की सृष्टि। रूसी राजकुमारियों की नकल। चाल-ढाल में ऐश्वर्य। सीधे कन्धे। हाव-भाव में मितव्ययिता। व्यवहार की शालीनता। धीमी, सधी हुई, सस्वर आवाज। फिर भी राह भूली हुई किशोरी कभी-कभी विद्रोह करती। आंखों में हंसती। पलकों में लुका-छिपी खेलती। यह वैभव, यह ऐश्वर्य सभीको अपनी ओर खींचता। सभीको परास्त करता।

न जाने कितने कुछ कहना चाहते, पर चाह कर भी रुक जाते। इस

सजल गम्भीरता के अतल में समा जाते। कांपते हुए गले, अस्वाभाविक चेष्टाएं; प्रभा अपने चारों ओर देखती, मुस्कराती, सिर को और ऊंचा उठाकर पहले ही से हारे हुए, सहमे हुए चेहरों पर उछलती-सी निगाह डालती।

पर शशिकान्त इससे परास्त नहीं हुआ। उसके स्वर की स्वाभाविकता कभी नहीं छिपी। इस ऐश्वर्य की आक्रामक धारा के जल में उसका अन्तर्भेदी व्यक्तित्व निस्तब्ध होकर बैठ गया। वह अपनी स्वाभाविक गति से आया और इस जीवन की सारी अस्वाभाविकता को समेटकर उसके दरवाजे पर खड़ा हो गया। वह मुड़ नहीं सकी। बाहर निकल भी नहीं सकी।

तीन साल पहले : प्रभा का मन एक स्मृति-जाल में बंधा छटपटाता रहा है।

निस्तब्ध, निर्वात निशा। चांद। निर्जन। हरी मखमली दूब के वर्ग, त्रिकोण। निश्चल यूकेलिप्टस और सिलवर ओक। धुंधली छायाओं के अपरिचित पेंसिल स्केच। शशिकांत का सम्मोहन। काल गतिहीन हो गया है। प्रभा, तुमको लेकर यह क्षण सम्पूर्ण हुआ। नहीं, हिलो नहीं, यह निस्तब्धता इतनी निरीह नहीं।

आई विल क्रैक योर काम ऐण्ड टॉसिल योर हेयर ऐण्ड ब्रूज योर लिप्स ऐण्ड ओपेन योर सोल। आई कैन सी यू स्काउलिंग ऐण्ड स्माइलिंग योर डिवास्टेटिंग, ऐनिहिलेटिंग, सैवेज स्माइल। स्माइल इट अगेन ऐण्ड आई ब्रश इट ऑफ योर लिप्स। यस, हियर इज ए ब्रूट। आई बाइट यू, डाइजेस्ट यू, असिमिलेट यू!

वह उच्छृंखलता! वह अपमान! सम्भ्रांत शालीनता ताश के महल-

सी एक साथ टूटकर बिखर जाती है। ताश के उन पत्तों के टुकड़ों तक को कोई पागल आंधी दूर-दूर उड़ाकर न जाने कहां फेंक देती है। स्नेह की बौछार से धुला हुआ सहज सलोनापन संस्कारगत अहंकार को धूमिल बना देता है।

सोचते-सोचते, अतीत की उत्कंठा उसकी दृष्टि में उतरकर वर्तमान की विकृति को ढंक लेती है। बसन्त का लड़का और यह पन्द्रह मिनट पहले की घटना ! इतनी भद्दी बात ! प्रभा को आश्चर्य होता है, वह उसे इतनी विद्रूप क्यों नहीं जान पड़ती।

मन में एक आकांक्षापूर्ण आकुलता का ज्वार-सा उठता है जो इस अपरूप कथा के भार को बहाकर उसे किसी अव्यक्त अन्तराल में फेंक देता है। उसके मुंह की करुण कोमलता में एक चांदनी रात ढुलक आती है। जो रात कभी ढलती नहीं। कभी उसे सोने नहीं देती।

कमरे में गैस की रोशनी धीमी हो चली है। बाहर बैठे हुए चौकीदार ने सोचा, इसमें हवा भरनी चाहिए। पर जब साहब लोग अन्दर बैठते हैं, ग्लास खनकते हैं, जोर से हंसी के ठहाके सुन पड़ते हैं, सिगरेट का धुआं कमरे में न अट सकने के कारण जालीदार दरवाजे से छन-छनकर बाहर आने लगता है तब चौकीदार अन्दर नहीं जाता। उसे किसीने मना नहीं किया, पर उसे इन ठहाकों से डर लगता है।

किसीको पुकारने के बजाय रजनीकांत स्वयं उठकर गैस में हवा भरने लगे थे। मुंह पर मुस्कान थी। बाल मत्थे पर झुक गए थे जिनके कारण स्वस्थ दिखनेवाले चेहरे पर भी अवस्था का भार-सा उतर आया था। वे हवा भर रहे थे पर निगाह विनायक की ओर थी।

विनायक हाथ में ग्लास लिए कुर्सी के पीछे खड़ा हुआ, ग्लासवाले

हाथ को हिलाकर कह रहा था, "तो गंगाधर, तुम आज जान सके कि मैं असभ्य हूं ? वेरी गुड। इसीलिए कि मैंने तुम्हें सुवर कहा ? माई डियर गंगाधर, मुझे सुवर कहना अच्छा लगता है। बोलो किसे कहूं ? मैं क्लास में अपने लड़कों को सुवर नहीं कह सकता। भूल जाओ वे दिन, जब तुम्हारे मास्टर तुम्हें सुवर नहीं, सुवर का बच्चा तक कह सकते थे और बेंतों से मारते भी थे। मैं अपने साथ के प्रोफेसरों को सुवर कहने से रहा। वे समझ ही न पाएंगे कि मैं क्या कह रहा हूं। मैं सिर्फ तुम्हें ही सुवर कह सकता हूं। तुम मेरे दोस्त हो। अव्वल दर्जे के सुवर हो।"

जी० जी० ने धीरे से कहा, "बिना सुवर बने तुम्हारी दोस्ती का टैक्स अदा ही नहीं हो सकता क्या ?"

कंधों को भारीपन के साथ हिलाकर विनायक बोला, "नहीं। मुझे गाली देने की आदत है। बचपन से मुझे गालियां खाने की और गालियों में बात करने की आदत रही है। इसीलिए तुम लोगों की बनी हुई भाषा मुझे नीरस लगती है ! रेस्त्रां के वेटरों की भाषा, राजदरबार का अभिनय करनेवाले ऐक्टरों की भाषा ! मुझे इससे नफरत है।"

क्या हो गया है इसे ? क्यों बार-बार यह आज उन्हें कुरेद रहा है। इसे घर पर बचपन में किसीने गाली नहीं दी होगी। यह एक विद्वान का लड़का है, जो खुद प्रोफेसर था। गालियां सुनी हैं उन्होंने। जहां वे पले थे वहां आदमी आदमी को तो क्या, जानवर को भी गाली देता है। जहां पुलिस के अफसर आकर उसके पिता तक को गालियां देते थे। पिता असामियों को, मजदूरों को गालियां देते थे, मजदूर जानवरों को, खेत-खलिहान को, भाग्य को गालियां देते थे। जहां का जीवन अपने-आप में एक अभद्र, अश्लील गाली से बढ़कर कुछ भी नहीं। विनायक क्यों उसीकी ओर बार-बार इशारा कर रहा है ?

संदेह की निगाह से उन्होंने विनायक की ओर घूरा। पर वह

उनकी ओर देख ही नहीं रहा था। वह गंगाधर से ही कहता रहा, "वैसे मैं संस्कृत का विद्वान् हूं। शब्द की नस-नस में घुसकर जैसा चाहूं वैसा अर्थ खींच सकता हूं। मैं कह सकता हूं कि श्रीमान गंगाधरजी, आप गंगा को धारण करनेवाले नहीं हैं। बल्कि दीर्घ संधि के हिसाब से गंगा के अधर यानी किनारे हैं, जिनका चुंबन शहरों के गंदे पानी के नाले करते हैं। मैं कह सकता हूं कि गंगाधरजी, आप खानदानी सुवर हैं। नहीं। आप सुष्ठु भी हैं, वर भी हैं। सब प्रकार से श्रेष्ठ हैं। अपनी याददाश्त के खज़ाने से वे-वे गालियां निकाल सकता हूं कि आप दंग रह जाएंगे। आपको गदहा बना सकता हूं, वकवादी और कशाई या कसाई बना सकता हूं और साबित कर सकता हूं कि ये सब भगवान विष्णु के और फिर 'यथा हरिस्तथा हरः' के हिसाब से श्रीमान गंगाधरजी के पुराणसम्मत विशेषण हैं। मेरी ओर आंख फाड़कर क्या देख रहे हैं, जनाब ?"

गंगाधर ने कहा, "आंख फाड़ने की बात ही है। बदतमीज़ी और काबिलियत का मिक्सचर···"

विनायक ज़ोर से हंसा। अंग्रेज़ी में बोला, "यह ! अब तुम समझ गए। मुझे अब और कुछ नहीं कहना है। सिर्फ आखिरी संदेश देना है मेरे साथियो, और वह यह है कि भले आदमियो, आदमी को उसके जज़्बात से परखो। बात से नहीं। बचपन की कुसंगत की वजह से कोई भी आदमी खराब भाषा बोल सकता है। उसे असभ्य न कहो। देखो कि उसमें मनुष्यता के कितने गुण हैं। उसमें असलियत होनी चाहिए। इंसानियत के बुनियादी तत्त्व। उन्हींकी मांग करो। देखो कि उसके मन में दया है या नहीं। वह तुम्हारे लिए कोई त्याग कर सकता है या नहीं। क्या तुम उसका विश्वास कर सकते हो ? अगर इन बातों का जवाब वह हां में दे तो तुम उसे अपनी मुहब्बत दे सकते हो। आदमी

सच्चा हो और गाली-गलौज भी करे तो उसकी चिंता न करो। मैं कहता हूं गंगाधर, मीठी बातें करनेवाले दगाबाज़ों से बचो। जो मीठी बातें बनाते हैं, वे कभी दस्तावेज़ों पर तुम्हारे जाली दस्तखत भी बना सकते। होशियार, इनसे होशियार रहो !"

गंगाधर हंसा। बोला, "हैव ए डबुल व्हिस्की दिस टाइम। यू आर स्टिल मच टू सोबर।"

निष्कृति की एक निश्वास। रजनीकांत ने निश्चित होकर सिर ऊपर उठाया। दरवाज़े को थोड़ा-सा खोलकर ओवरसियर बाहर खड़ा था, वे बोले, "क्या बात है ?"

वह अन्दर आया। चाल-ढाल में कुछ हिचक-सी थी, वे फिर बोले, "बात क्या है ?"

घबराहट में मेज का एक कोना पकड़कर, उसके सहारे कुछ आश्वस्त होकर उसने कहा, "कोई खास बात नहीं थी सरकार। वही बसन्त है, जिसके आठ-दस गीत परसाल यहीं पर सरकार ने सुने थे, उसे भी गाने के लिए बुलाया था। पर उसके लड़के ने कुछ ऐसी फिज़ां पैदा की कि गाना-वाना बन्द हो गया है। बसन्त व छः-सात आदमी वापस चले गए हैं।"

उनकी भौंहें क्षण-भर के लिए संकुचित हुईं, फिर पूर्ववत् स्थिर हो गईं। लापरवाही से उन्होंने पूछा, "क्यों ?"

ओवरसियर ने दबी ज़बान से कहा, "क्या कहा जाए, सरकार, ज़माना ही ऐसा आ गया है। बसन्त के लड़के ने वहीं सबके सामने मेरी बेइज्ज़ती की और फिर मेम साहब के लिए भी कहने लगा…।"

क्षण-भर के लिए उनका चेहरा तमतमा उठा, पर केवल क्षण-भर के लिए। उसके बाद ही उसपर मधुर हास्य का एक विचित्र रंग लौट

आया। बोले, "तुम भी कैसी छोटी-छोटी बातें लेकर सामने आ जाते हो। किसीने कुछ कह दिया होगा। इसमें रखा क्या है। जाओ, तब तक उन लोगों को वहीं रोको। हम लोग आते ही हैं। जाओ, वहीं चलो।"

बसन्त की प्रशंसा गंगाधर ने रजनीकांत से सुन रखी थी। उन्होंने पूछा, "तो क्या सचमुच वसन्त वापस चला गया है? आएगा नहीं?"

ओवरसियर के कुछ कहने के पहले ही वे उससे बोले, "अरे ऐसी क्या बात है? यहीं तो होगा। उसे भी बैठाल लो।"

विनायक ने कहा, "उसे व्हिस्की का एक पेग दे दो और इतमीनान से बैठने दो।"

पर इस सलाह को सुनने के पहले ही ओवरसियर वहां से चला गया। विनायक के व्याख्यान का तार टूट गया था। वह सोचने लगा कि उसकी बात कहां से छूटी थी। तब तक जी० जी० ने आजकल के जमाने में गंवारों के भी दिमाग हो गए हैं, इस विषय पर एक व्याख्यान देना शुरू कर दिया और उनके पिता की वकालत के दिनों में अफसर तो अफसर किसी भी सफेदपोश की कितनी इज़्ज़त थी इसके किस्से सुनाने शुरू कर दिए। पर इन सब बातों को सुनकर रजनीकांत ने बड़ी समझदारी से कहा, "यह तो ज्यादती की बातें हैं जी० जी०, उनकी हालत से कब तक फायदा उठाओगे? गांव के आदमी को भी अपनी ऊंचाई तक कभी उठने दोगे या नहीं?"

थोड़ी देर बाद ही अपने तीनों साथियों को कमरे में छोड़कर वे बाहर बरामदे में आए। ओवरसियर को बुलाकर बोले, "यह कैसा गोलमाल था। पूरी तरह से बताओ।"

उसने घटना को यथाक्रम बताया, बसन्त के लड़के की उद्दण्डता को

चढ़ाते हुए, प्रभा से उसने जितनी बातें कहीं थीं उनको कुछ और अभद्रता के साथ दोहराते हुए। पूरी बात सुनकर, थोड़ी देर चुप रहने के बाद वे अंग्रेज़ी में बोले, "तुम बिलकुल गधे हो।"

ओवरसियर कोई जवाब न दे सका। धीमे पर कठोर स्वर में वे फिर बोले, "एक गंवार, चमार का एक लड़का इस तरीके से यहां ऊधम मचाकर चला जाए और तुम कुछ न कर सको! और बाद में तुम आते हो मेरे मेहमानों के सामने इस तरह का वाक्य सुनाने के लिए?"

उसने सर झुकाकर जवाब दिया, "गलती हुई सरकार, पर उस लड़के को अभी ठीक किए देते हैं।"

वे कुछ देर चुप रहे। फिर सोचते हुए बोले, "नहीं, उससे बोलने की ज़रूरत नहीं। हम लोग आधे घण्टे के भीतर वहीं आते हैं। तब तक लोगों को रोके रहो। और जैसे भी हो, बसंत को ज़रूर बुला लेना। उसने जो गीत परसाल सुनाए थे, उन्हें डाक्टर गंगाधर सुनना चाहते हैं।"

ओवरसियर सर झुकाए खड़ा रहा। वे फिर बोले, "जाओ, वहीं जाओ।" और इतना कहकर कमरे के अन्दर चले आए। कमरे में आते-आते उनके चेहरे की स्वाभाविक स्निग्धता लौट आई। आते ही उन्होंने व्हिस्की का एक लम्बा-सा घूंट हलक के नीचे उतारा और बोले, "हां, फिलासफर, तो तुम क्या कह रहे थे इन लोक-गीतों की बाबत?"

विनायक के सामने उसका गिलास भरा हुआ रखा था। कुछ देर से उसने उसे छुआ तक न था। वह सिर्फ बात करता रहा था। ज़बान कभी-कभी लड़खड़ा जाती थी, पर उसका मन अभी नशे के सामने पराजय मानने को तैयार न था। इसीलिए उसने हास्यास्पद रूप से आंखें फाड़कर अपने सचेत होने का एक भौंडा-सा प्रमाण देते हुए कहा, "मैं लोक-गीतों की बाबत क्या कह रहा था? जानना चाहते हो? तुम्हें कविता के बारे में कुछ मालूम है या नहीं? नहीं? तो सुनो। जानते हो कविता कहां से

निकलती है ? कविता निकलती है रहस्य से, अज्ञान से। कविता अपनी बात को कहने का बड़ा ही आदिम, बड़ा ही अपाहिज तरीका है। और तुम्हारे ये लोकगीत तो उस तरीके के और भी आदिम नमूने हैं। फिर भी, तुम्हें वे गीत पसन्द हैं। क्यों ? व्हाई ? बिकाज़ देयर यू डिस्कवर सम क्रूड मैटीरियल टु लुब्रिकेट योर इमोशनल मैकेनिज़म। बट माई डियर फेलो, दिस इज़ नॉट द काइण्ड आव् लुब्रिकेशन मेण्ट फार यू। दिस इज़ द चीपेस्ट डिवाइस आव् वर्किंग योरसेल्फ अप। दैट इज़ ऑल ऐबाउट इट। एनीवे, इटिज़ अ मैटर आव् टेस्ट, रादर आव् मैकेनिज़म। माई ओन इंजिन रन्स ऑन द फाइनेस्ट गैस, द यूज़ आव् योर क्रूड ऑयल विल जैम इट।"

प्रभा कमरे में उसी तरह लेटी थी। लेटी रही। सहसा पेट्रोमैक्स की सनसनाहट कई बार बढ़ी-घटी और वह अकस्मात् बुझ गया। मिट्टी के तेल की अनभ्यस्त गंध कमरे में फैली। उसने किसीको पुकारना चाहा, पर पुकारने का मन नहीं हुआ। अनिच्छा से उठकर उसने पेट्रोमैक्स की हवा निकाल दी। कमरे में अंधेरा फैल गया था, पर बिलकुल अंधेरा नहीं। पड़ोस के कमरे की रोशनी बीच के दरवाज़े के शीशों से छनकर आ रही थीं। इस धुंधलके और खामोशी को मिटाने के लिए जिस उद्दामता की आवश्यकता है वह इस समय उसके मन में शेष नहीं थी। बुझी हुई पेट्रोमैक्स के पास से पहले वह पलंग की ओर बढ़ी और फिर खिड़की के पास खड़ी हो गई।

रात के नौ बज रहे होंगे। खिड़की के उस पार कुछ दूरी पर ही आदमी के बराबर ऊंची करीने से कटी, घनी हेज थी और उसके पार अमलतास के पेड़ों की गझनार कतार डाकबंगले की चहारदीवारी का

इशारा कर रही थी। इस समय कुहरा साफ हो गया था और चांदनी छिटक गई थी। पछुवा हवा में अमलतास के घने और काले पत्ते चमक रहे थे। उनके हिलने में कुछ ऐसा था कि प्रभा को लगा, चांदनी में लहरें-सी उठ रही हैं। एक हलका-सा ज्वार उठता है, गिरता है। वह चांदनी में चमकते पत्तों को देखती है पर चांद और भी ऊपर है जो उसे नहीं दीख पड़ता। सब कुछ धुंधली छायाओं और स्पष्ट प्रकाश का गुंथा हुआ एक जाल-सा जान पड़ता है। जो दिखाई देता है उसमें भी इसी हवा की सी सिहरन है, चांदनी की सी अस्पष्टता है। सब कुछ रहस्यमय है।

उसने खिड़की की जाली पर अपनी हथेली टिका दी। ठंडक लगी, उसे छोड़ दिया और फिर चुपचाप दोनों हथेलियों पर ठुड्डी रखकर, कुहनियों को खिड़की पर टिकाकर खड़ी सोचती रही।

अगहन की रात का पहला पहर। पछुवा हवा बहती है। दूर किसी झील के किनारे से किसी सारस का एकाकी स्वर बहता हुआ आता है। पास की अमराइयों में चमगादड़ बोलते हैं। रह-रहकर कोई लोमड़ी खांसती है। गांव के पास जहां गन्ने का रस निकाला जा रहा है, गुड़ बन रहा है, आग जल रही है, वहां से कुछ लोगों के ज़ोर-ज़ोर से बोलने की आवाजें कभी-कभी पछुवा के ऊपर उभरकर कान में पड़ती हैं। पर इन स्वरों के बावजूद सब कुछ शांत-सा, मंत्र-मुग्ध-सा लगता है। जैसे किसी तरंगहीन सरोवर के पानी को काई और सिवार ने ढक लिया हो। किनारे पेड़ों के झुरमुट निस्पन्द खड़े हों; सारस, बगले, जलकुक्कुट—सब चुपचाप स्थिर होकर कहीं दूर से आनेवाले अस्पष्ट वंशी-रव को आंख मूंदकर सुन रहे हों। शब्द हों फिर भी चारों ओर निश्शब्दता हो। प्रभा को भी इस वातावरण में एक निश्शब्दता का अनुभव होता है। पर उसे कुछ काल्पनिक स्वर सुन पड़ते हैं, एकार्डियन के, प्यानो के, गिटार के।

जिसको रिझाने के लिए कल्पना ने ये स्वर उभारे हैं उसके और

प्रभा के बीच न जाने कितने सागरों के, पर्वतों के व्यवधान हैं। शशिकांत। अभी उसे डेढ़ वर्ष तक बाहर रहना होगा। स्काई स्क्रैपर्स, पिक्चर्स, लिमोसिन्स, काकटेल्स और यह एकांत ग्राम, बांसों के झाड़, पकते हुए रस और सीली पत्तियों से उठनेवाले धुएं की गन्ध। यह व्यवधान बेचैन करता है। पर बुरा नहीं लगता।

हुडुक बजा, मंजीरे खनके और गांववालों के गाने का स्पष्ट, आकर्षक और समवेत स्वर वातावरण की स्निग्ध गंभीरता का उपहास करने लगा।

प्रभा चौंकी, फिर बिना कुछ सोचे हुए कमरे से बाहर आकर बरामदे में एक खंभे के सहारे चुपचाप खड़ी हो गई।

ओवरसियर तेज़ी से आता हुआ दीख पड़ा। प्रभा को देखकर ठिठका। फिर सलाम करके चुपचाप खड़ा हो गया। प्रभा ने पूछा, "ये सब इतनी जल्दी फिर से इकट्ठे हो गए ?"

ओवरसियर ने विनम्रता से कहना चाहा पर शेखी मचल-मचलकर शब्दों से बाहर फूटी पड़ रही थी। बोला, "गए ही कहां थे सरकार? सब यहीं आसपास ही तो थे।"

कुछ झिझकते हुए उसने पूछा, "और बसंत ?"

इस बार वह अभिमान के साथ हंसा। बोला, "यह सुनिए न सरकार, बसंत ही तो गा रहा है।"

प्रभा ने सुना। सचमुच ही कोई भारी किंतु स्पष्ट, आवेगपूर्ण किंतु अकम्पित स्वरों में रैदास का एक भजन गा रहा था। पहले वह गाता था, पीछे साथ गानेवाले दोहराते थे। कुछ क्षणों के लिए उसे लगा, चांदनी फीकी पड़ गई है। तारे धुंधले हो गए हैं पर पछुवा का वेग बढ़ गया है और वह पछुवा नहीं रह गई है—सब दिशाओं को एकाकार करती हुई, पेड़ों के सूखे पत्तों को एक भारी खड़खड़ाहट के साथ गिराते

हुए किसी अलौकिक हवा के झोंके सभी दिशाओं से आ रहे हैं। सब ओर जा रहे हैं।

पर ओवरसियर की बात ने उसे इस स्थिति से झकझोरा। वह कहता रहा, "अरे सरकार, बसन्त तो बसन्त, कहिए तो उसके लड़के को बैठाकर गवाना शुरू कर दूं। हिकमत अमली से काम लिया है सरकार!"

प्रभा के मत्थे पर बल पड़ गए। संदेह के साथ बोली, "क्या किया आपने ? कैसे मान गया वह ? इतनी जल्दी !"

जैसे कोई बड़ी गोपनीय बात हो, पर सफलता के उद्वेग में जिसका गोपनीय रखना, कठिन जान पड़ रहा हो, इस मजबूरी से ओवरसियर ने धीरे से कहा, "अपने ही तक रखिएगा सरकार, मेहमान लोग न जान पाएं। नहर की माइनर निकलनेवाली है न सरकार ! यहीं से मील-भर आगे। साफ-साफ कह दिया कि अकड़ोगे तो अभी तो पानी की नाली चाहते थे, तुम्हारे इन्हीं खेतों के ऊपर से नहर निकाल दूंगा। अब सरकार, नाली को चाहना एक बात है पर नहर को झेलने की दम इस सड़ियल चमार में नहीं है सरकार !"

प्रभा के मत्थे पर वैसे ही बल पड़े रहे। स्थिर दृष्टि से उसे देखती रही। कुछ भी बोल नहीं सकी। वह कहता रहा, "बस सरकार, एक ही दांव में बाप-बेटे दोनों चित ! लड़का तो सर झुकाकर पिटे हुए कुत्ते की तरह दुम दबाए गांव की ओर चला गया और बसन्त ने पैर पकड़े। हमने कहा कि नहीं, पैर पकड़ने हैं तो मेम साहब के पकड़ो। वही माफ करेंगी।"

धीरे से प्रभा ने कुछ संक्षिप्त-सा जवाब दिया। ओवरसियर उसे सुन नहीं सका। वह कमरे के अन्दर वापस चली आई।

अंधेरा कमरा। दरवाजे के शीशों से छनकर आनेवाली रोशनी। कुर्सियां खिसकाने की खड़खड़ाहट। कोई ग्लास फर्श पर लुढ़ककर जोर से खनकता है। भारी गलों की आवाजें और हंसी। दरवाजे के शीशे पर किसीके सिर का छाया-चित्र उभरता है, फैलता है। शीशों की रोशनी ढंक लेता है। कोई असभ्यता के साथ बाहर के दरवाजे को धक्का मार-कर खोल देता है। वे बरामदे में आ गए हैं। अंकिल विनायक की भर्राई आवाज़। कैसी छिटकी चांदनी। भारी बेसुरे गले से गाने का अवास्तविक प्रयास। "अच्छा तो विनायक साहब क्लासिकल पर पहुंच रहे हैं।" जी० जी० का मीठा स्वर। "यू आर ए सोकेज पिट।" विनायक की भर्रा-हट। गवारों का गाना खूब जम रहा है। गंगाधर प्रशंसा करता है। "यह गाना नहीं है, चांदनी का असर है।" जी० जी० की खनकती हंसी। जैसे ईंट के फर्श पर लुढ़कनेवाला ग्लास फिर लुढ़का दिया गया हो। "कैऽऽ सीऽऽछिऽटऽकीऽऽ व्याकुल बृज की भामिनी। कुछ समझे मिस्टर रजनीकांत, सब व्याकुल हो गईं। अब देखना, मैं भी व्याकुल होने ही वाला हूं। इस चांदनी की इज्ज़त रखनी ही पड़ेगी। बिना व्याकुल हुए काम नहीं चलेगा।" अंकिल विनायक बहक रहे हैं। चांदनी की मोहकता से सहानुभूति दिखा रहे हैं। "मैंने कहा था न ओवरसियर साहब, आप छोटी-छोटी बातों को आकर हमारे सामने गाने लगे। बसन्त तैयार हो गया न? वही तो गा रहा है।" पापा ओवरसियर को झिड़क रहे हैं। आत्मीयता का अनुभव कर रहे हैं। जब पीते हैं तभी यह आत्मीयता दबकर मन से बाहर भागती है।

अंकिल विनायक किसीसे फिर कुछ कह रहे हैं। आवाजें धीमी होती जा रही हैं। वे लोग लॉन पर पहुंच गए होंगे।

भजन बन्द हो गए हैं। अब कुछ और गाया जा रहा है। हुडुक और मंजीरा भी बन्द हो गया है। यह बसन्त की आवाज है। वह गा रहा

रहा है। उसीकी गाई हुई कड़ी को रास्ता देने के लिए समवेत गान के सब स्वर किनारे खड़े हो गए हैं। फिर ज़ोर से हुडुक बजता है। कई पुरुष-कंठ एकसाथ गा रहे हैं। अगर बसंत ने रुककर न गाया होता तो यह स्वरों की एक अर्थहीन उद्दाम धारा भर रह जाती, जो मन को बहा ले जाती, पर जिसमें मन डूबकर भी रम न पाता। वसन्त ही ने गाया—प्रेम बागों में फूलता नहीं। प्रेम बाज़ार में बिकता नहीं। आदमी बिना प्रेम के अंधेरी रात की तरह है।

बसंत गा रहा है। प्रेम की बातें कर रहा है।

प्रभा का मन रोने को होने लगा। इन गीतों की भी क्या विडम्बना है। जिसके जीवन में प्रेम का एक आंसू भी न गिरा होगा, सहानुभूति की एक झलक भी न मिली होगी; अंधेरी रात-सा गहन, स्नेहहीन जीवन, उससे घिरकर वही प्रेम का गीत गाता है। आवेग-भरी इस आवाज में, चमकती आंखों के इस उल्लास में, जो मूर्छा छिपी है उसका अनुभव कौन कर सकता है? जीवन निराशा और संघर्षों से जर्जर हो रहा है। दो बीघे खेतों के साथ अस्तित्व के श्वास बंधे हैं। उनको छीनने का भय दिखाकर जिस निरानन्द की विभीषिका सामने रखी गई होगी, उसीसे इस आनन्द की सृष्टि हो रही है।

प्रभा के मन में एक कचोटन-सी उठकर बार-बार एक कांटेदार वृत्त में घूम रही है। जैसे इसी अगहन की सांझ में कोई भयंकर वाराह किसी पास के जंगल से दौड़ता हुआ आता है, अपनी पैनी कांपों को लपलपाता हुआ हवा की तरह सामने निकलकर पास के गन्ने के खेत में घुस जाता है। खेत के अन्दर दोनों कांपों से गन्नों को तोड़ता-फोड़ता रहता है। वहीं वेग से घूमता है, बैठता है, उठता है और खेत के बीच विनाश और उत्पात का एक आतंकमय वृत्त बनाकर फिर बाहर निकल जाता है। खेत की फसल अपनी निस्तब्ध सघनता में अपने भीतर की

चोट को कहीं दिखा नहीं पाती।

और इस बसन्त के दुर्भाग्य से भी ज्यादा मन को सतानेवाली बात है उसके लड़के की असहाय पराजय। अभी जो युवा वाणी अपनी नवीन चेतना के उत्साह में उसकी गम्भीर सम्भ्रांति के टुकड़े-टुकड़े कर रही थी, वह बर्फ की तरह जड़ हो गई होगी। आंखों की वह आग, चेहरे की वह चमक अगहन के कोहरे में घुल-सी गई होगी। दो बीघे खेतों की रक्षा के सामने यौवन का स्वाभाविक अहंकार घुटने टेककर बैठ गया होगा। बसन्त इधर आया होगा और वह गांव की ओर सर्दी में घुटनों को लचा-लचाकर, छाती पर हाथों की मुट्ठियां बांधे वापस चला गया होगा। आम, महुए, आंवले के पेड़ों के नीचे की पगडंडी से। बांस, करौंदें, मकोय और ढाक के झाड़ों के किनारे-किनारे। टूटे जूतों से चट्-चट् की आवाज निकल रही होगी। पराजय का यह उपहास उन मार्गों में अब भी गूंज रहा होगा।

प्रभा को लगा, वह इस परिस्थिति पर कुछ अधिक सोच रही है। इसमें उसका मन अचानक अपनी स्वाभाविकता से आगे जाकर द्रवित हो गया है। इस अंधेरे को मिटाया जाए। सोचकर प्रभा उठी और पास के कमरे से रोशनी लाने चली गई—वही कमरा, जिसमें अभी ग्लास खनका था, कुर्सियों की खड़क सुनाई दी थी। मेज-कुर्सियां हटाकर उसमें तीन पलंग बिछा दिए गए थे। उस पारवाले कमरे में मेज पर खानसामा खाना लगा रहा था। झीने पारदर्शक परदे से उसकी साफ, धुली हुई चमकदार वर्दी लालटेन की रोशनी में झिलमिला-सी रही थी। प्रभा ने इस कमरे से जलता हुआ पेट्रोमैक्स उठाना चाहा, तब तक उसने देखा, विनायक दूसरे कोने में चारपाई पर चुपचाप लेटा है। वह उसकी ओर गई और पूछा, "क्या बात है अंकिल, आप गाना सुनने नहीं गए?"

"नहीं प्रभा, मुझे ये गाने अच्छे नहीं लगते।"

"सचमुच अंकिल ? इन गीतों की स्वाभाविक कविता आपको बिलकुल नहीं छूती ?"

"नहीं, नहीं डार्लिंग, यह सब बकवास है। इन गीतों में न स्वाभाविकता ही है, न कविता ही। और फिर, कविता कभी स्वाभाविक नहीं होती।"

"तो, आप अभी से सो जाएंगे ? इतनी जल्दी ?"

"हां डार्लिंग। ये गीत सुनने के मुकाबले सोना अच्छा है।—स्लीप इज़ ए पैसिव फार्म आव् नोबुल लिविंग। व्हेन देयर इज़ नथिंग बेटर टु लिव फॉर, गो टु स्लीप।"

"तो अंकिल, आप सोइए न। इस तरह मुझे देख क्यों रहे हैं ?"

"मैं तुम्हें देख रहा हूं और तुमपर अफसोस कर रहा हूं। तुम और तुम्हारे पापा दोनों ही मरीज़ हैं। तुम दोनों को इन गीतों की बीमारी है। इसका इलाज करो। तुम दोनों को जल्दी ही अच्छा हो जाना चाहिए—खास करके तुमको। नहीं तो तुम्हारी जिन्दगी अभी से ही बनावटी हो जाएगी।"

"यह आप कह क्या रहे हैं, अंकिल ?"

"मैं कह रहा हूं कि तुम्हारे पापा अगर ग्राम-गीतों से बनावटी प्रेम दिखाते हैं तो वह ठीक है। वे ऊपर से नीचे तक बने हुए आदमी हैं। पर तुम इस रास्ते पर क्यों जा रही हो ? अपनी जिन्दगी जियो प्रभा। इधर-उधर हाथ-पैर मत पटको। गीतों का शौक है तो प्यानो पर गाओ। रेडियो पर विदेशी संगीत सुनो। जैसी हो, उसी तरह से रहो। अपने पापा की बात जाने दो। ही एज ए ग्रेट मैन—ऐन एक्सट्रीमली लवेबुल हिपोक्रिट !"

"अंकिल, मैं अब जा रही हूं। आपसे बात नहीं करूंगी। आप पापा

को हिपोक्रिट कहते हैं।"

"तुम्हारे पापा को मैं प्यार भी तो करता हूं। और मुझे गलत न समझो। मैं उनकी तारीफ कर रहा हूं। हिपोक्रिसी हैज़ इट्स ओन गुड प्वाइंट्स। इट इज़ ए बफर अगेन्स्ट दि इनटॉलरेबुल। इट इज़ लाइक हॉट वाटर प्रेजेंटेड इन अ रबर बॉटल। इट कम्फर्ट्स योर एकिंग लिम्ब्स।"

"अंकिल, आपकी तबियत तो ठीक है न? अब तो आप पापा की जान-बूझकर बेइज़्ज़ती कर रहे हैं।"

"गलत। तुम बिलकुल गलत समझ रही हो प्रभा। न मैं उनकी बेइज़्ज़ती जान-बूझकर कर रहा हूं, न अनजान में ही। वैसे बेइज़्ज़ती करनी ही हो तो शरीफ आदमी जान-बूझकर ही करता है। इंसल्ट मस्ट बी वेल प्लान्ड। डेलिबरेट। इट मस्ट हैव अ डेफिनिट परपज। हाऊ कुड यू इन्सल्ट ए मैन अनकांशसली? इफ यू डिड दैट, इट वुड शो विलेनी इन योर ब्लड।"

"ठीक है अंकिल। पापा का ज्यादा अपमान करने की जरूरत नहीं है। इतना ही बहुत है।"

"तुम्हारे पापा का अपमान? कौन कर सकता है प्रभा? तुम्हारे पापा की व्हिस्की मेरे पेट में उबल रही है। मैं इस वक्त उनकी तारीफ ही करूंगा। तुम्हारी मां गांव की ही लड़की थीं। तुम्हारे पापा ने तब जो भी किया हो, पर इस समय तो वे आंख मूंदकर ग्राम-गीत सुन रहे हैं। भाव-विभोर हो रहे होंगे। वण्डरफुल!"

"अभी आप पापा के बारे में बात कर रहे थे और अब मां के बारे में भी······।"

"गलत। तुम बिलकुल उल्टी बात कर रही हो प्रभा। क्या कह रही हो? फिर से कहो।"

"मैं कह रही थी अंकिल, तुम इस तरह पीते क्यों हो?"

"मैं इस तरह क्यों पीता हूं? अपने पापा से पूछो, विनायक उसके पास आते ही क्यों पीने की बात करने लगता है। बिना पिए भी उसने तुम्हारे पापा से कभी बात की है? क्यों?"

"..................।"

" प्रभा, बोलती क्यों नहीं, बोलो न?

" कहां हो प्रभा? कहां हो तुम?"

ये कैसी आवाज़ें सुनने में आ रही हैं। गाना बन्द हो गया है। किसी-की जय बोला जा रही है। अभी-अभी तो गंगाधर ऐण्ड कम्पनी और पापा गीत सुनने के लिए गए थे। आधा घंटा भी न हुआ होगा और गाना बन्द हो गया। पीने के और खाने की मेज़ के सजने के बीच जितना समय लगा उतनी ही देर में गंगाधर ने बसन्त के सब गीत सुन लिए! कई आवाजें एकसाथ मिल-जुल रही हैं। साफ और मिटते हुए—सब प्रकार के स्वर कान में पड़ रहे हैं। वे वापस जा रहे होंगे। बसन्त भी जा रहा होगा। ओवरसियर? वह क्या कर रहा होगा? लॉन पर कुछ आवाज़ें आ रही हैं। शायद पापा और उनके सभी साथी लौट रहे हैं। "जितना सुनते थे, उतना अच्छा तो नहीं था।" गंगाधर कह रहा है, "उतना अच्छा क्या, बिलकुल होक्स था, कुछ भी तो नहीं था।" देवीदत्त अपनी मीठी आवाज में कडुवाहट भरने की कोशिश करता है, "तुम लोगों को भूख लगी थी, इसीलिए तुम्हें पसन्द नहीं आया। खाना खाकर चलते तब ठीक रहता।" पापा समझा रहे हैं, "देवीदत्त कभी डिनर के बाद बैठ नहीं सकता।" "खाना, फिर सोना, यह अपना पुराना कौल है।" देवीदत्त अपनी बात कहकर खुद ही हंस पड़ा है। वे बरामदे में आ गए हैं।

"खानसामा।" "जी हुजूर, खाना लग चुका है।" "वेरीगुड, लवली ब्वाय।" दरवाजे की हल्की-सी चुरमुर। जाली का दरवाजा स्प्रिंग के जोर से शोर करता हुआ अपने-आप बन्द हो जाता है। दूर के कमरे में ग्लास खनकते हैं। "नहीं, नहीं, थैंक्यू।" गंगाधर की थकी हुई आवाज। कुछ और शब्द, जो सुने नहीं जा सकते। बगल के कमरे में देवीदत्त का स्वर, "फिलासफर, फिलासफर, उठो, खाना लग गया है। क्या हुआ ? समाधि लगाने का इरादा है क्या ?" "नहीं, मैंने रजनीकान्त की सलाह मान ली है। या तो खाओ, या पियो। मैं पी चुका हूं, खाऊंगा नहीं।" "नान्सेंस, खाना ठंडा हो रहा है। जल्दी आओ।" हलके पांवों की दूर होती हुई स्पष्ट आवाजें। कुछ खड़कता है। कुर्सी या मेज, कुछ तेजी से किनारे की ओर हटाई गई है। पास ही बरामदे में कौन निकला है ? अंकिल विनायक होंगे। पुवर फैलो। बातें सुकरात जैसी करते हैं। पर व्यवहार...। मां ! यह सब है क्या ? वे पापा के लिए इतनी कड़ी बात कैसे कह सके ? कितना अच्छा हो, यह सब झूठ हो। पर...। यह झूठ न होगा। इतने साहस से, इतनी स्पष्टता से वे पापा को अपमानित कर रहे थे। क्या हुआ था मां को ? मेरी मां ! और गंगाधर क्या कह रहा था ! पापा क्या कह रहे थे ? कैसी होंगी वे ? आज दो घंटे से क्यों वे बार-बार वातावरण पर एक अदृश्य शक्ति की तरह उभर रही हैं। पापा को इस विनायक से कौन-सा भय है ? वे आज शाम से ही कितने उदास हैं ! इन्हीं गीतों को रात-रात-भर तन्मय होकर सुनते रहते थे। आज वे इतनी जल्दी कैसे उठ आए ? बाहर यह कौन कराह रहा है ? बरामदे में खम्भे के सहारे एक छाया-सी हिलती है। यह कैसा विकर्षक स्वर है। अंकिल विनायक को क्या हो रहा है ? शायद कै कर रहे हैं। इसी तरह इनके दिमाग से सिद्धान्त और विचार निकलते होंगे। अनडाइजेस्टेड स्टफ। अधपची चीजें। बरामदे में शायद देवीदत्त भी आ गए हैं। "यू आर सिक, विनायक,

लो पानी लो। मुंह धो डालो।" हां, देवीदत्त ही हैं। "पानी, ठीक है, पानी ही सही। अब मेरा पेट बिलकुल साफ है, तुम्हारे दिमाग की तरह। उसमें कुछ भी नहीं है। तुम्हारे दिमाग की तरह। वह न अपने को तकलीफ देगा न किसी दूसरे को। तुम्हारे दिमाग की तरह।" अंकिल विनायक खम्भे के सहारे खड़े हैं। "ठीक है फिलासफर। खाना खाओगे? चलो, चलकर बैठो या लेटो। यहां सर्दी लग जाने का डर है।" देवीदत्त समझाते हैं। "मैंने आग पी ली थी। उसे उगल दिया है। अब इस चांदनी को पी रहा हूं। यह उसे बराबर कर देगी। मुझे आधा पेग व्हिस्की दो। उससे मैं बिलकुल ठीक हो जाऊंगा। फिर खाना खाऊंगा। फिर रजनीकान्त को धन्यवाद देकर सो जाऊंगा। परफेक्ट प्रोग्राम। जाओ, इसे रेडियो से एनाउन्स करा दो।" देवीदत्त की फीकी हंसी। "चलो। वहीं कमरे में तुम्हारा प्रोग्राम पूरा हो जाएगा। खिड़की से चांदनी आ रही है। चांदनी। खिड़की से आ रही है। लव्ली, हाऊ इज शी? आस्क हर टू स्टे। आई विल स्लीप विद हर।" दोनों की सम्मिलित हारी हुई हंसी। शायद ये लोग अपने ही आनन्द-उल्लास से ऊब गए हैं। अंकिल विनायक चांदनी को पीना चाहते हैं। उसके साथ सोना चाहते हैं। पर उनकी बात में थकान है। चांदनी उनके लिए एक सफेद पहाड़ी है, जिस-पर वे चढ़ नहीं सकते। जिसके नीचे किसी अंधेरी कन्दरा में वे लेट गए हैं। दूर के कमरे में जोर के ठहाके लग रहे हैं। प्लेट और चम्मचों की खनक सुनाई पड़ती है। और जोर के ठहाके। डिनर कामयाब हो चली है। अगर तुम हंस सकते हो तो कामयाब हो। ऐन अदर अनडाइजेस्टेड थाट! फिर भी, इस समय ये सब कितने कामयाब हैं। पापा डरते हैं कि विनायक कुछ जान न गया हो। और विनायक अंकिल शायद सब जानते हैं। सिर्फ मैं ही नहीं जानती। किन्तु अंकिल विनायक बताना चाहते थे। मैंने सुना नहीं। क्या हो गया था मुझे? मत्थे की शिराएं क्यों झनझनाने

लगी थीं। मुझे किसने उठ आने के लिए विवश किया। अंकिल विनायक खाना खा रहे हैं, पापा के साथ। और उन्हें सहन कर पाने के लिए व्हिस्की पीते हैं। और इन लोगों को ग्राम-गीत अच्छे लगते हैं। ओवरसियर बसन्त के सामने लहलहाते खेतों का और मटियाली नहर का दुःस्वप्न पैदा करता है। उस दुःस्वप्न में जो चीखने की आवाजें उठती हैं उसीको गीत समझकर सब उल्लास में डूब जाते हैं। ओवरसियर कामयाब है, पापा कामयाब हैं। विनायक कामयाब है। और बसन्त ? और मां ? कैसी थीं मां तुम ?···

स्वर, दृष्टि और भाव की इस अधूरी दुनिया में एक आक्षेप उपस्थित हुआ। प्रभा के कमरे का दरवाज़ा खोलकर एक नौकर अन्दर आया और छोटी मेज़ पर से प्लेटें, ग्लास और खाने का बचा सामान सावधानी से उठाने लगा। प्रभा से पूछा, "काफी ले आएं सरकार ?"

"नहीं। यह पेट्रोमैक्स भी उठा ले जाओ। अब मैं सोऊंगी।"

कुछ क्षणों बाद, फिर वही ठंडा, अधूरा अंधेरा जिसपर एक ओर से शीशों से छनकर आती रोशनी का और दूसरी ओर से फैली हुई चांदनी का आक्रमण हो रहा था। मुलायम बिस्तरे पर वह चुपचाप लेटी थी। आंख पर बाहर फैली हुई चांदनी की स्निग्ध सिहरन थी। नींद नहीं थी।

पड़ोस के कमरे में रोशनी बुझी। एक और ठहाका। "गुड नाइट, गु'नाइट गंगाधर। गुड नाइट जी० जी०। अब मैं अपने बिस्तर पर हूं। पर यहां अंधेरा है। चांदनी तुम्हारी ओर है। पर कोई बात नहीं। स्लीप विथ हर। स्लीप वेल। मैं भी सोऊंगा। दि इन्नोसेंट स्लीप आफ् अ मैन विद क्लीन कासंस ऐण्ड क्लीन बावेल्स, देयर इज़ नो डिफरेंस

बिट्वीन द ट्ट्र, दो ।…"

"मुझे नींद आ रही है, भाइयो ! बात मत करो। तुम लोग बहुत बात करते हो। गु'नाइट। स्वीट ड्रीम्स, माई ब्वायज। गु'नाइट। गु' नाइट।" फिर कुछ गुपचुप बातें। फिर धीमी हंसी। स्टेज से अंकिल विनायक हट चुके हैं। गंगाधर और देवीदत्त भी हटनेवाले हैं। गंगाधर ऐण्ड कम्पनी लिक्विडेट हो रही है। बातों का दीवाला पिट चुका है। ये लोग अपने उल्लास से ही थक गए हैं। तभी तो खाने के बाद आधा घंटा भी नहीं बैठे। सोने चले गए। पापा। वे खाने के कमरे ही में मेज़ हटवाकर सोएंगे। पर सोए कहां हैं। उधर के दरवाज़े का शीशा चमकता है। पापा के कमरे से रोशनी आ रही है। मां के साथ क्या किया होगा इन्होंने ? अंकिल विनायक क्या कहना चाहते थे ? कुसूर पापा का ही है ! ऐसे गलत आदमियों के साथ उठते-बैठते हैं, जो मेरे मन में विष फैलाने की कोशिश करते हैं। मैं मन में विष पड़ने की बात सोचती हूं और बाहर चांदनी फैली है। अमलतास के काले पल्लवों पर वह फिसलती है, फूटती है। मुझे नींद नहीं आती। शशिकान्त, देखो, मुझे नींद नहीं आती। तुम्हें मैं कल लिखूंगी, मुझे रात नींद नहीं आई। चांदनी, अमलतास, छायाएं, पछुवा के झोंके—इनके जाल में मेरी नींद तड़पती रही। मैं कुछ न कर सकी। पर इतनी-सी बात को तुम कितनी जल्दी पढ़ डालोगे। यह युगों का अनुभव, एक निमिष में तुम्हारी आंखों की स्निग्धता में खो जाएगा।

जान सकोगे वह कैसा था ?……

प्रभा को नींद नहीं आई, वह धीरे से उठी, बरामदे में खुलनेवाला दरवाज़ा खोला, बाहर आई। निकलते ही चांदनी और हवा—इनके

षड्यन्त्र में बंधकर रह गई। लॉन के उस पार दूर पर पेड़ों की कतार थी। ठंडा, चिकना, चितकबरा अंधेरा। उसके आगे मैदान में चांदनी लहरें ले रही थी। पेड़ों के बीच से क्षितिज की चमक जैसे लुक-छिपकर उसकी ओर आना चाहती थी पर अंधेरा उसे अपने में बांध रहा था। हवा का एक झोंका बालों और मुंह पर अपनी चिकनी ठंडी उंगलियां फेरता हुआ रुक-सा गया, प्यार और वितृष्णा से पैरों में लिपट गया। उसे ध्यान आया, रबर के स्लीपर में पैर ठंडे हुए जा रहे हैं।

तब तक सिगार के धुएं का तीखापन उसे अपनी ओर खींचने लगा। देखा, रजनीकान्त के कमरे का दरवाजा अच्छी तरह बन्द नहीं है। रोशनी की एक पीली रेखा बाहर झांकती है, बरामदे के बीच से निकलकर उसके कमरे के दरवाजे से टकराती है, शीशों पर चुपचाप सो जाती है।

अभी पापा सोए नहीं, प्रभा ने उसी रोशनी में कलाई घुमाकर देखा, ग्यारह बजकर पैंतीस मिनट। धीरे से उसने रजनीकान्त के कमरे का दरवाज़ा खोला।

मेज़ पर धीमा लैंप जल रहा था। पलंग पर करीने से बिछा हुआ बिस्तर उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। पर वे उसीके पास पड़ी हुई आराम-कुर्सी पर ढीले होकर लेटे हुए थे, पैरों पर कम्बल पड़ा था। चश्मे के पीछे आंखें खुली हुईं, आकर्षक। बाल मत्थे पर एक ओर से गिर रहे थे, थकान-सी फैलाते हुए। सिगार ओठों पर टिका हुआ था। उन्होंने गर्दन टेढ़ी की, प्रभा की ओर देखा। धीरे से उंगलियों के बीच सिगार को थामकर बोले, "आओ बेटी, बैठो।"

आश्वस्त, स्नेहशील शब्द। जैसे वे थके मन से प्रभा के आने की बहुत देर से प्रतीक्षा कर रहे हों।

प्रभा पास की कुर्सी पर बैठ गई। बोली, "तुम अभी तक सोए नहीं

पापा ?"

वे धीरे से सिर हिलाकर बोले, "नहीं," फिर रुककर, "और तुम ? तुम्हें भी नींद नहीं आई ?"

"नहीं," उसने भी धीरे से सिर हिलाकर कहा। दोनों के ओठों पर एक फीकी-सी मुस्कान चमकी। बुझ गई।

सहसा वह उठकर रजनीकान्त के पास आई। उनके कन्धे पर कोमलता से अपनी उंगलियां टिकाकर बोली, "पापा, बारह बजनेवाले हैं। अब सो जाओ।"

जैसे वे ऊंघ रहे हों और उन्हें किसीने झकझोर दिया हो। भौंहों पर बल डालकर उन्होंने अपना मुंह ऊपर उठाया, प्रभा की ओर देखा। देखते रहे।

काल का विहंग बीस वर्षों को पारकर एक टूटे कच्चे घर के मुंडेरे पर बैठकर चीत्कार करता है।

सायबान में बकरियां में-में कर रही थीं। दरवाज़े तक पीपल और पाकड़ के हरे पत्ते टुकड़े-टुकड़े होकर छितरे पड़े थे। बाहर कुछ नंग-धड़ंग बच्चे एक कुत्ते के पिल्ले को घसीट-घसीटकर छेड़ते थे। उसके भागने पर फिर से उसकी दुम पकड़कर खींचते थे। बिना किसी स्पष्ट कारण के शोर मचा रहे थे और अन्दर छप्पर के नीचे एक पुरानी खाट में, पुराने बिस्तर पर अपनी प्रताड़ना का बोझ सर पर लादे हुए रानी चुपचाप पड़ी थी। कभी-कभी रुककर धीरे से कुछ कहती, फिर चुप हो जाती थी। वे चारपाई की पाटी पर बैठे हुए थे। मुंह पर कोई भाव न था। सिरहाने गंगाधर खड़ा था, गले में स्टेथस्कोप लटकाए। छप्पर से मिला हुआ आंगन। उसके दूसरी पार एक चबूतरे पर जो दो साल की लड़की

बैठी थी, आंखों का काजल आंसुओं के सहारे धोती हुई, बहती हुई लार में ओठों को डुबाए हुए, किसी बुढ़िया के हाथों पर हाथ पटकती हुई, वही यह प्रभा है। वही आज अपने विश्वविजयी आत्मविश्वास के साथ अपनी स्निग्ध हंसी से जीवन की सारी समस्याओं का समाधान लुटाती है, उनके कन्धे पर अपनी छोटी, चिकनी, सुडौल उंगलियों को टिकाकर इस थकी हुई जिन्दगी को सहारा देती है, मां की तरह कहती है, "पापा, अब सो जाओ।"

वही प्रभा !

"हां बेटी, सोना तो है ही।" कहकर वे अचानक उठे। बचे हुए सिगार को ऐशट्रे में निर्दयता से कुचलकर उन्होंने गाउन उतारा, और बिस्तर पर जाकर लेट गए। फिर प्रभा से बोले, "और, तुम ?"

प्रभा ने कुर्सी खींचकर उनके सामने कर ली। उसपर बैठ गई। उनके छोड़े हुए कम्बल को अपने पैरों पर डाल लिया। बोली, "तुम सो जाओ, तब मैं चली जाऊंगी।"

वे एक फीकी हंसी हंसे। बोले, "आओ प्रभा, हम लोग साफ-साफ मान लें कि हमें नींद नहीं आ रही है। बोलो, क्या बात है ?"

तब कुछ देर रुककर उसने पूछा, "हिकमत अमली किसे कहते हैं ?"

वे स्थिर दृष्टि से उसे देखते रहे। पूछा, "क्यों ?"

"वह इसीलिए पापा, कि मैं भी इसे जानना चाहती हूं। यह बड़ी आश्चर्यजनक चीज होगी। इसे सीखना चाहती हूं। बताइए न पापा, हिकमत अमली क्या चीज है, जो रोते हुए आदमी को भी गाना सिखा देती है।"

इतनी देर चुप रहने के कारण प्रभा ने जब यह लगभग एक सांस

में कहा तो उसे स्वयं लगा, उसकी बात में एक अस्वाभाविक तीव्रता है।

उन्होंने भौंहें सिकोड़ीं। प्रश्नसूचक दृष्टि से उसकी ओर देखा। प्रभा ने कहा, "इसीके सहारे तो बसन्त से इतने सारे गीत ओवरसियर ने निकाल लिए।" सहसा एक अद्भुत-सी कटुता उसके गले में भर गई।

इस बार वे कुछ ऊबे हुए, परन्तु मीठे स्वर में बोले, "क्या हुआ प्रभा बेटी ! साफ-साफ कहतीं क्यों नहीं ?"

उत्तर में प्रभा को साफ-साफ ही कहना पड़ा। बसन्त के लड़के ने किस प्रकार उसके सामने ओवरसियर की शिकायत की, भद्र समाज में ग्राम-गीतों को फैशन मानकर चलने पर आक्षेप किया, उसके लिए भी बड़े शब्द कहे, अपने पिता को वहां से खींच ले जाने की चेष्टा की—इस सबसे लेकर किस प्रकार उसके खेतों को बरबाद कर देने का भय दिखाकर, आतंक की नंगी तलवार उसके सिर पर लटकाकर उसे गाने के लिए बाध्य किया गया—पूरी बात प्रभा ने रजनीकान्त को बता दी।

वे सुनते रहे। कुछ बोले नहीं। बात समाप्त हो जाने पर भी कुछ देर तक कुछ नहीं बोले। सिर्फ भौंहें कुछ क्षणों के लिए संकुचित हुईं। फिर आखीर में एक सांस खींचकर कहने लगे, "कुसूर मेरा ही है, बेटी। यह सब मेरे चाहने से ही हुआ।"

आश्चर्य से प्रभा ने उनकी ओर मुंह उठाकर देखा। वे शीघ्रता से कहने लगे, "नहीं, नहीं, मुझे गलत न समझो। मैंने यह नहीं कहा था कि उसे यों भयभीत किया जाए। मैं सोचता था, वह समझाने से मान जाएगा। इसीलिए मैंने कहा था, बसन्त को जरूर रोकना !"

दोनों थोड़ी देर चुप रहे। रात की खामोशी को तोड़ते हुए पास ही के खेतों से कुछ सियार बोलने लगे। पहले एक बोला, फिर दूसरा, फिर सबने मिलकर अपने कर्कश निनाद से रात की सारी मृदुता नष्ट कर दी। इस स्वर में न जाने क्या था, जिसने प्रभा को झकझोर-सा

दिया। जो बात उसे दो-तीन घंटे से कुरेद रही थी, अचानक होंठों पर आ गई। बोली, "पापा, मुझे आज न जाने क्यों, मां की याद आ रही है। मुझे उनका चेहरा भी याद नहीं, फिर भी···।"

वे बिस्तर पर सजग होकर बैठ गए। बोले, "क्या बात है, बेटी ?"

मन को रुलानेवाले जितने प्रसंग हैं, सभीने आज उनपर आक्रमण करना चाहा है, उन्होंने सोचा। क्या हुआ है प्रभा को ? वही बात उन्होंने कही भी, "मन को दुःखी करनेवाली बातों को सोचने से क्या मिलेगा, बेटी ? जाओ सो जाओ।"

मां की बात ! पापा उसे मन को रुलानेवाली बात समझते हैं। अंकिल विनायक कहते हैं, यह दम्भ है। प्रभा की देह एक अवांछित आवेग से झनझना उठी। उसने कहा, "पापा, मुझे क्षमा कीजिएगा। मुझे आज नींद नहीं आएगी। ऐसा ही रहा तो शायद मुझे कभी नींद नहीं आएगी, जब तक मुझे मालूम न हो जाएगा कि मां के साथ क्या हुआ। ऐसा क्या हुआ, जिसे डाक्टर गंगाधर गुप्त रखना चाहते हैं। अंकिल विनायक जिसकी याद करके आपका पीठ पीछे अपमान करते हैं। मुझे बताइए न पापा ! यह सब क्या है ?"

वे अनिमेष दृष्टि से प्रभा को देखते रहे, फिर सांस खींचकर बोले, "विनायक मेरा अपमान करता है। ठीक ही करता है, बेटी।"

प्रभा कुर्सी से उठकर खड़ी हो गई। उनके पास आकर बैठ गई। उनकी हथेली को अपने हाथ में लेकर धीरे से बोली, "पापा, यह सब न कहिए। मैं जानता हूं, वे सब झूठ बोलते हैं। पर आप मुझे बताइए न, मां को हुआ क्या था ?"

वे कुछ देर चुप बैठे रहे। फिर एक अत्यंत थकी हुई निराश आवाज़ में बोले, "प्रभा, तुम्हारी मां का मैं आदर नहीं कर सका। तुम्हारे पैदा होने के दो साल बाद उनका देहांत हो गया। जब मुझमें इतनी समझ

आई कि मैं उनका आदर कर सकूं, तब वे नहीं रहीं। यह हमारा-तुम्हारा दोनों का दुर्भाग्य है, बेटी। अपने-आपको मेरा मन जिस निर्दयता से ठुकराता आ रहा है, गंगाधर और विनायक की बातें उसके सामने कुछ भी नहीं हैं। तुम्हारी मां की कोई कहानी नहीं है बेटी। मैं उन्हें ठीक से पहचान नहीं सका, यही अपने-आपमें एक कहानी है।"

काल का विहंग अपनी क्षिप्र गति से बीस वर्षों की उड़ान भरता है।

दिन के दस बजे वे एक स्टेशन पर रेल से उतरे। वे और गंगाधर। तब वे असिस्टेंट इंजीनियर थे। गंगाधर ने डाक्टरी शुरू की थी। बैसाख के अंतिम दिन, पर हवा ठंडी थी। प्लेटफार्म पर उतरते ही उनकी निगाह सेमल के दो दानवाकार वृक्षों पर पड़ी। आज भी न जाने क्यों, वे दो पेड़ रजनीकांत के मन में, चमकदार नीले आसमान की पृष्ठभूमि में अपनी असंख्य बाहें हिला-हिलाकर उस दिन की घटना को स्मृति की राह पर खींचते हैं। जब-जब उस दिन की याद उन्हें आती है, तब-तब वे दो पेड़ बहुरूपियों की तरह छोटे होते हैं, कभी फैलते हैं, कभी पल्लवों को अपने-आपमें समेटकर वृत्ताकार-से दिखने लगते हैं।

दो दिन पहले अकस्मात् हल्की-सी वर्षा हो गई थी। अकालवर्षण। छोटी-छोटी बूंदें धूल के ऊपर जमकर सूख गई थीं, उनके चिह्न अभी तक मिटे नहीं थे। पर इसीसे सेमल के नये पल्लव और भी हरे हो गए थे, उनके बीच से कहीं-कहीं बसन्त की संपन्नता के अवशेष, कुछ लाल फूलों के गुच्छे, हवा के बहाव से ऊपर आ जाते थे। फिर हरीतिमा के गर्त में खो जाते थे।

उन्हीं पेड़ों के नीचे एक बैलगाड़ी इंतज़ार कर रही थी। वे और गंगाधर उसपर बैठे। गंगाधर ने दवाओं के बक्से को संभालकर पैरों के

पास रख लिया। स्टेथस्कोप गले में डाल लिया। जम्हाई लेते हुए कहा, "सात मील चलना है ?"

वे कुछ भी नहीं बोले। गंगाधर ने उनका कन्धा थपथपाया। चेहरे पर हंसी लाने का एक व्यर्थ प्रयास करते हुए बोले, "परेशान क्यों होते हो आर० के० ? रानी को कुछ नहीं हुआ है। तार में सिर्फ यही था कि उसे बुखार है। गांव के लोग हैं, घबरा गए होंगे।"

गाड़ीवान ने कहा, "नहीं डाक्टर साहब, वे नाहक थोड़े ही घबराए हैं। रानी बिटिया की हालत सचमुच बड़ी खराब थी। तभी तो तार दिलाया गया।"

रजनीकान्त को याद है, इस स्पष्टोक्ति से झुलसकर गंगाधर का चेहरा तमतमा उठा था। उसने बात वहीं छोड़ दी थी। दूसरी ओर देखने लगा था।

गलियारा संकरा है। ऊंची-नीची राह पर बैलगाड़ी धक्के खाती हुई चलती है। दोनों ओर हरियाली है। बांसों की गझनार झाड़ियां, उनके बीच और पीछे ताड़, जामुन, महुवे और आम के घने बागों का क्रम फैल रहा है। पत्तियां धूप में चमक रही हैं और नीचे की छाया अपनी सघनता के भार से काली हुई जा रही है। अकाल वर्षा की बूंदों से प्रोत्साहित होकर मेढ़कों ने दूर के तालाब में बोलना शुरू कर दिया है। पेड़ों के नीचे तितलियां उड़ती हैं और पर फैलाकर जमीन पर लुढ़क जाती हैं। मधुमक्खियों की अटूट गुनगनाहट हवा में गूंजती है। एक पपीहा अविश्रान्त रूप से पास की किसी डाली पर बोल रहा है—बराबर बोलता जाता है।

दूर से जो इतना हरा-भरा और आकर्षक है, उसके बीच से निकलने-वाली राह इतनी ऊंची-नीची होगी, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

उनके मन में चारों ओर से गरज-घुमड़कर एक तूफान-सा हहराने लगा। उन्हें लगा, रानी अब नहीं बच सकती। सब कुछ स्वीकार कर लेने की, जोर-जोर से रोकर आंसू बहाने की भावुकता ने उन्हें आक्रान्त कर लिया। वे गंगाधर से बोले, "गंगाधर, उसे जैसे भी हो बचाओ। नहीं तो मैं जिन्दा न रह सकूंगा। वह नहीं रही तो मैं समझूंगा मैंने ही उसकी हत्या की है। उसके न रहने पर मेरा अपराध मुझे जीवित न छोड़ेगा।…… तुम नहीं जानते हो, जब वह मेरे घर से यहां आई थी, तब उसकी क्या हालत थी। फिर भी मैं उसे रोक न पाया। यह सब मेरा ही कसूर है। मैंने ही…।"

गंगाधर ने मुड़कर उनकी ओर देखा। उसकी आंखों में एक अस्वाभाविक चमक थी। साथ ही कटुता भी। न जाने क्या था उस दृष्टि में कि उनका सारा आवेश शान्त हो गया। वे हतोत्साह हो गए। सिर छाती पर लटक आया। अभी एक क्षण पहले उनके मन में आया था, मिथ्याचार का पर्दा फाश कर देने से ही शायद उन्हें कुछ दैवी सहायता मिल जाए, शायद बच्चों की तरह अपराध स्वीकार कर लेने से ही उन्हें दंड न भुगतना पड़े। इस दृष्टि की बर्फीली तिक्तता ने उनके इस भाव को भी जड़ बना दिया। उन्हें सहसा अनुभव हुआ, गाड़ीवान के सामने वे ऐसी बातें कर रहे हैं जो उन्हें नहीं करनी थीं।

गंगाधर ने तेजी से कहा, "इन सब बातों को सोचने से क्या फायदा?" फिर उसने अपने को संभाला और समझाते हुए बोला, "चियर अप, माई ब्वाय। रानी को कुछ नहीं हुआ है। तुम बेकार परेशान हो रहे हो।"

स्पष्ट सूर्यप्रभा के नीचे अलसाई हुई, घनी, अंधेरी छाया। हिलते हुए पल्लव। पी कहां, पी कहां, की अनवरत गूंज।

वे आरामकुर्सी पर चुपचाप बैठे हुए थे। पास ही प्रभा थी। मुंह में सिगार था। मत्थे पर चिन्ता की हलकी रेखाएं। मन में बीस साल पहले की यादें घुमड़ रही थीं। बैलगाड़ी के वे सात मील, गंगाधर की दी हुई सान्त्वना, किन्तु उस दृष्टि की सहानुभूतिहीनता, वह कच्चा घर। बकरियों की मिमियाहट। छप्पर, धूल। रानी का तेज बुखार। बेहोशी······।

अतीत के बन्धन टूटते हैं। दो साल की प्रभा को लेकर जीवन की उद्दाम आधुनिकता उन्हें अपनी लहरों के ऊपर इतने दिन तक उछालती रही हैं।

अतीत के बन्धन। पर क्या वे सचमुच ही टूट सकते हैं? अतीत को क्या जमीन में दफनाया जा सकता है? रानी के अवशेषों की भांति? क्या उसे कमरे में बन्द करके बाहर से ताला लगाकर, निश्चिन्तता के साथ वर्तमान में घूमा जा सकता है?

बहुत दिन हुए, उन्हें नौकरी करते हुए लगभग तीन साल हो चुके होंगे, वे सिनेमा देखने गए थे। कोई गाना उन्हें पसन्द नहीं आया। पांवों की लड़खड़ाहट पर काबू रखते हुए वे सिनेमा-हाल से बाहर निकल आए। सामने एक जीना था, जो ऊपर की छत पर जाता था। धीरे-धीरे आत्मसंतोष की एक शान्त मुद्रा में वे ऊपर चले गए। ऊपर खुली छत थी। उसपर खड़े-खड़े उन्होंने आसमान की ओर देखा।

चांद चमक रहा था पर नीचे, बहुत नीचे सड़क पर बिजली के लट्टू चमक रहे थे। इक्के-तांगे, मोटरों का शोर। नीचे की चकाचौंध के मुकाबले उन्हें चांद में कुछ फीकापन-सा जान पड़ा। उन्होंने फिर ऊपर की ओर देखा। हलके नशे में उन्हें चांद की कई छापें उसके चारों ओर छितरी-सी नजर आईं। वे मुस्कराए और फिर नीचे की ओर देखने लगे।

उन्हें जान पड़ा कि चांद नकली है। सिगरेट की पन्नी का बना हुआ है। उसमें न शीतलता है, न कविता है। उसमें केवल भुलावा है। नीचे पेट्रोल की दूकान पर चमकता हुआ बल्ब—यह चांद के मुकाबले ज्यादा असली है। उड़ते हुए घोड़े का विज्ञापन। उसमें अधिक जीवन है, अधिक गति है। कुछ दूर पर झिलमिलाता हुआ एक दूसरा सिनेमा-हाउस, किसी काफे की रंगीन रोशनी, तांगों और साइकिलों की बजती हुई घंटियां, मोटरों के दूर तक खिचे हुए, बहावदार हार्न, कहीं बजता हुआ रेडियो संगीत—इस सबमें न जाने कितने रूप, कितने स्वर उभरते हैं। उन्होंने कुछ और गौर से नीचे की ओर देखा; रोशनी और हलकी धूल के जाल में चांदनी का उफान अपने-आप बुझ गया है। सड़क पर रेंगती हुई सवारियां और आदमी—सब बहुत ही जीवन्त और जागरित हैं। पर सब उनसे कई फुट नीचे हैं। चींटियों की रफ्तार से रेंग रहे हैं।

सिनेमा हाउस की छत के किनारे खड़े-खड़े उन्हें लगा कि इन रेंगती हुई छायाकृतियों से वे बहुत ऊपर उठ चुके हैं। उनमें कुछ ऐसी पूर्णता-समग्रता है जो दूसरों में नहीं है। ऊपर उन्हें चांद फर्जी-सा जान पड़ता है। नीचे का संसार घिसटता हुआ-सा लगता है। वे चुपचाप कुछ मिनट उसी तरह खड़े रहे। फिर नीचे उतर आए।

बंगले पर वापस आते ही खानसामा ने बताया, "मेम साहब आ गई हैं।"

"मेम साहब ?" सन्देह के साथ उन्होंने खानसामा की ओर देखा पर वह मुस्करा नहीं रहा था।

"तुम्हें किसने आने के लिए कहा था ? क्यों आईं तुम ?"

बंगले के पीछे एक नीची-सी चहारदीवारी उठाकर काफी लम्बा-

चौड़ा आंगन बना दिया गया था। वह आंगन इतना साफ-सुथरा, लम्बा-चौड़ा था कि देखते ही मन में घुटनों के बल चलनेवाले बच्चों, बैडमिंटन खेलती हुई किशोरियों या शाम को आरामकुर्सियां डलवाकर व्हिस्की पीनेवाले अधेड़ों की याद आ जाती थी। पर इस समय उनका रूप इन सभी कल्पनाओं को तिरस्कृत कर रहा था। कमीज़ का ऊपरी बटन खोले हुए, टाई की गांठ ढीली करके वे आंगन में एक मुंहज़ोर घोड़े की तरह उछल-कूद रहे थे। नौकर-चाकर बाहर खड़े हुए सुन रहे थे। समझ भी रहे थे। पर वे अभी-अभी संसार की उच्चतम चोटी से उतरकर निचले तथ्यों की सतह पर आए थे। उसी कुढ़न और खीझ में वे बार-बार चीख रहे थे, "क्यों आईं तुम ? क्यों आई ?"

लगभग तेईस वर्ष की एक दुबली-पतली तरुणी, मांग में ढेर-सा सिंदूर भरे हुए, एक नीली, सस्ती साड़ी में शरीर की लज्जा को छिपाए हुए। रंग गेहुंआ। आंखें आकर्षक और छोटी। चेहरा लम्बा। कभी आकर्षक रहा होगा, पर इस समय उसमें रुखाई थी, सूनापन था, जो मन में सहानुभूति की जगह जड़ता पैदा करता था। उसने धीरे से, आश्चर्यजनक रूप से मीठी आवाज़ में कहा, "तुम्हीं बताओ, वहां कैसे रहूं ? तुम्हारे होते हुए...।"

अब वे दांत पीस रहे थे, "मेरे होते हुए ? बेहया कहीं की ? मैं कौन हूं तेरा ? कैसे आई यहां पर ?"

कोई जवाब नहीं आया।

तब उन्होंने दांत पीस-पीसकर भुनभुनाना शुरू किया, "कौन-सी तकलीफ है तुम्हें वहां पर ? क्यों नहीं चुपचाप वहीं पड़ी रहतीं ?"

तब भी कोई जवाब नहीं आया।

आवाज़ को कुछ ऊपर खींचकर मजबूरी-सी दिखाते हुए वे फिर बोले, "क्यों मेरी जिन्दगी को बरबाद करने पर तुली हुई हो ?"

इस बार उसने धीरे से कहा, "और मेरी जिन्दगी ?"

उन्होंने उद्धत भाव से सिर उठाकर उसकी ओर देखा, पर कुछ बोले नहीं।

"कल सुबह की गाड़ी से तुम्हें वापस जाना होगा।" बाद में उन्होंने स्पष्ट और कठोर स्वर में आदेश दिया।

आदेश की पृष्ठभूमि में कई दृश्य घूम रहे थे जिनकी ओर उसका सतृष्ण मन बार-बार लालायित होकर देख रहा था।

इसी तरह उन्होंने डा० सीता दत्त के सामने भी अपनी नाराज़गी दिखाई थी।

वे सिनेमा देखकर वापस लौटे थे। देह और मन में व्हिस्की की गर्मी थी। कमरे में वे आरामकुर्सी पर चुपचाप लेटे हुए थे। कपड़े बदलने तक का मन नहीं हो रहा था। बाहर जनवरी की ठिठुरन-भरी रात। बादल। तेज हवाएं, जिनकी झरझराहट में लगता था, बर्फीली चोटियों के पहाड़ उखड़-उखड़कर बहते चले आ रहे हैं। कमरे के अन्दर पड़े-पड़े उन्होंने दरवाज़े पर हलकी-सी दस्तक सुनी। आंखें मूंदे हुए, उन्होने कुछ तीव्रता से कहा, "कौन ? चले आओ।"

और दूसरे ही क्षण उनके सामने डा० सीता खड़ी थीं।

वे कुर्सी से हिले नहीं। महिलाओं के आने पर कुर्सी से खड़े होने का अभ्यास उनके आवेग के सामने दब गया। आंखें निकालकर संस्कारहीन बर्बरता से अपनी आवाज को तपाते हुए बोले, "तुम ? क्यों आई यहां ? क्यों आई तुम ?"

इस तेईस साल की, दुबली-पतली, गेहुंए रंग की, बालिका जैसी युवती की निरीह परापेक्षा आज उनके आवेग को, द्रोह को और भी

विद्रूप बना रही थी। पर किसी दिन डा० सीता ने जो उत्तर दिया था, उसने उनके आवेग की पर्तों को एक ही फूंक में उड़ा दिया था; भीतर से उनके मन की चिकनी सौम्यता झलकने लगी थी, मन की अतल घाटियों में कुहासे से भरे बादलों का जाल न जाने किस मंत्र-शक्ति से एकसाथ छंट गया था। उसकी जगह उसी कुहासे के अवशेष में प्रकाश की सुनहरी किरणों को अपने में फंसाकर इन्द्रधनुषों के अर्धवृत्त झलमलाने लगे थे।

डा० सीता का उत्तर भी एक प्रश्न ही था।

चेस्टर की जेब में दोनों हाथ डालकर उन्हें नीचे दबाते हुए (जेबों की सौन्दर्य-रक्षा के खिलाफ, एक बुरी आदत), सैंडिल के पंजे पर ज़ोर डालकर एक पैर की एड़ी उठाते हुए खड़े ही-खड़े शरीर की नृत्य-मुखर चंचलता को झलकाकर, गर्दन को एक ओर इस प्रकार झुकाकर कि बालों की शोख लटें मत्थे और एक आंख को घेरने लगें। फिर उन्हें मत्थे की एक झिड़की से पीछे की ओर फेंककर। भौंहों पर बल डालते हुए और बाद में आंखों को कुछ फैलाकर। सहलाता हुआ, ज़िद्दी बच्चों को सुलानेवाली मधुरता से सुना हुआ उत्तर, "मैं क्यों आई? बताऊं तुम्हें?"

एक क्षण के लिए उन्होंने सीता की ओर देखा। उन आंखों की कौतुकपूर्ण चमक पर उनकी आंखें अटक गईं। ऊपर के ओठ को निचले दांतों की उजली आभा से दबाकर वह हंसी रोक रही थी। पर वे शोख आंखें।

फिर डा० सीता ने उन्हें नहीं बताया कि वे क्यों आईं। खुले दरवाज़े से जाड़े की हहराती हवा पर्दों, मेज़पोशों और दीवार की तस्वीरों को झकझोरती रही। वे खड़े हो गए थे। उसीके बालों में अपना सर छिपाकर, उसकी गर्दन और कन्धों को जलते हुए होंठों से

चूमते हुए, कांपती और धीमी आवाज में वे बार-बार कह रहे थे, "माफ करो मुझे। सीता, मुझे माफ करो, आई एम ए ब्रूट ! ए ब्रूट !"

और, वह उन्हें अपनी बांहों में संभालती हुई, धीरे से हंसती हुई, "ओह ! व्हाट ए ग्रोन अप बेबी ! क्लब में ताश के पत्तों पर लड़ता है, घर आए मेहमान से झगड़ता है और फिर माफी मांगता है। लो आंसू सुखा लो। वाइप आफ थोर ड्रैकेन टियर्स !"

और जब वे मुंहजोर घोड़े की तरह उछल-उछलकर अपनी पत्नी का अपमान कर रहे थे तभी उनके कानों में क्षण के एक खंड-मात्र में इस कौतुकपूर्ण हंसी की खनक गूंज गई। शब्दों के वेग में बहे आनेवाले और भी तीक्ष्ण शब्दों का प्रवाह रुक गया। जैसे वे अनायास किसी अदृश्य लिफ्ट से, बिना कोई चोट खाए, ऊपर की छत से नीचे के कमरे में आ गए हों, जहां हवाओं और अन्धड़ का शोर नहीं, सब कुछ जाना-पहचाना, साफ-सुथरा लग रहा हो। उन्हें एकदम से लगा, वे कोई बहुत छोटा, निकम्मा, निरर्थक काम कर रहे हैं। डांट-फटकार को बिना कोई नाटकीय मोड़ दिए उन्होंने फिर अपनी पत्नी की ओर अपरिचित-सी दृष्टि से देखा और तेजी से ड्रेसिंग रूम की ओर चले गए। कमरे में घुसने के पहले उन्होंने फिर मुड़कर देखा। आंगन में वह अकेली खड़ी थी। चुपचाप, मूर्ति जैसी।

प्रभा से उस रात की बात वे संक्षेप में बता गए, दो-तीन वाक्यों में, "मैं पागल था, बेटी। उन्हें गांव में छोड़ रखा था। वे अपने-आप मेरे यहां पहुंचीं और मैंने डांटा-फटकारा; वापस चले जाने को कहा। क्या हो गया था, मुझे ?"

पर इन शब्दों में वह अनुभूति कहां जो यह कहते ही कहते उस रात

की पूरी निर्लज्जता को, क्रूरता को अपने में समेटकर उनकी छाती के भीतर बवण्डर-सा उठाने लगती है। ड्रेसिंग रूम में जाने से पहले उन्होंने एक क्षण के लिए घूमकर उसे देखा था।

इतने बड़े, इतने ठंडे आंगन में, निरभ्र, तारासंकुल आकाश के नीचे वह अकेली खड़ी थी। जैसे किसीने उसे न हिलने के अभिशाप से बांध दिया हो, जैसे किसीने उसे पत्थर, मिट्टी, राख के जड़ ढेर में बदल दिया हो। इतने भारी आंगन में उसकी खामोशी जैसे असंख्य जंगली जानवरों के अनियन्त्रित चीत्कारों द्वारा आकाश की छाती फाड़ रही हो।

आज जब कानों में वे चीत्कार न होते हुए भी गूंजने लगे हैं, तब वह सचमुच ही पत्थर, मिट्टी, राख बन चुकी है। पर उस रात उन्होंने न कुछ देखा, न सुना। क्योंकि तब आंखों में दूसरी आंखों की नुकीली चमक-भरी थी, कानों में लहरों की तरल भंगिमा, देवदारुओं का समीर-मर्मर गूंज रहा था। मन में एक ऐसी मिठास फैल गई थी कि उस रात की कटुता की कल्पना तक उन्हें अपनी निगाह में छोटा किए दे रही थी।

कमरे में खानसामा को बुलाकर उन्होंने कहा कि वह मेम साहब के खाने और रहने का इन्तज़ाम कर दे। खानसामे का बनाया उन्हें खाना न था, रहने का कमरा ठीक किया जा चुका था, यह जानकर उन्होंने सिर हिलाया। खानसामा बाहर चला गया।

डा० सीता की उस हंसी की स्मृति ने, जो उस दिन उन्हें अकस्मात् इतना सदाशयपूर्ण बना गई थी, आज होंठों पर एक विद्रूपता-सी फैला दी। प्रभा ने देखा नहीं। वह केवल सुन रही थी। इस समय केवल सुन सकती थी।

उन्हें तब लगता था, उनके साथ भारी अन्याय किया गया है। इंजीनियरी के पहले उन्होंने थोड़ा-बहुत साहित्य पढ़ा था, अब भी पढ़ने के आदी थे। विश्व-साहित्य के प्रख्यात उपन्यास, नाटक, कहानियां, सब की नायिकाएं उनकी कल्पना में एक ऐसी नारी की सृष्टि कर चुकी थीं जो प्रेम करना जानती हो। जो प्रेम का प्रतिफल देती हो। जिसमें मृदुता हो। साहसिकता हो। जो संरक्षण चाहते हुए भी उनकी सुरक्षा की वास्तविक क्षमता रखती हो। जो उनके जीवन की थकान उतार सके। जो उन्हें समझ सके। (तब उन्हें सबसे यही शिकायत थी, तुम मुझे समझ क्यों नहीं पातीं ?) जूलियट, नटाशा, बीट्रिस, अन्ना करेनिना, एग्नीस—सबका एक सम्मोहक मिश्रण। वे इसीमें आक्रान्त रहते। साहित्य का उत्तेजक प्रभाव। फिर क्लब की झकझोरने वाली शामें। डांस। शराब। प्रणय-आतुर रमणियां। उन्हें इनमें अपनी भूली नायिकाएं मिलतीं। डॉ० सीता दत्त। उन्होंने अपने पति को छोड़ रखा था। सरकारी अस्पताल में डाक्टर थीं। आकर्षक युवती। आर्थिक रूप से स्वतन्त्र। कहतीं, "मैं नई रामायण लिख रही हूं। सीता को राम ने बिना अपराध के छोड़ दिया था, मैं वैसी सीता नहीं। अपना अपमान करनेवाले राम को मैं स्वयं छोड़ चुकी हूं।"

सारी वितृष्णा और कल्पना के सहारे उन्होंने डा० सीता दत्त को अपनी उपपत्नी बनाया। निकट से जानने के दूसरे दिन ही उनके मन ने पुकारकर कहा, "यही मेरे वर्तमान की रानी है। मेरी चिरपत्नी। और वह है मौलिक पत्नी। बेसिक वाइफ। मूल की तरह ही उसका पृथ्वी से ऊपर उभरना ठीक नहीं। दोनों अपनी जगह रहें।"

विवाह होने के बाद के दो-तीन वर्षों की वह किशोर आसक्ति अपमानित पड़ी रही। धीरे-धीरे मूर्च्छित हो गई। कभी उन्होंने रानी से इतना-इतना प्यार भी किया था, इसकी याद करके उनके मन में अब

किसी कोमलता का संचार नहीं होता था। बल्कि उन्हें आश्चर्य होता, अपनी पुरानी भावुकता पर ग्लानि-सी होती।

इस प्रकार प्रणय-साहित्य, निराधार भावुकता, आत्महीनता की भावना, क्लब, व्हिस्की, इन सबकी सहायता से एक नायिका की प्रतिष्ठा हुई और कुछ दिन तक उन्हें लगता रहा, जो रूमानी उपन्यास वे अब तक पढ़ते रहे थे, उन्हींको वे अब जीने लगे हैं।

साहित्य, शेक्सपियर, गेटे, टॉल्सटाय, बालज़क, ज़ोला, मोपाँसां, डिकेंस, हार्डी की अमर कृतियां। आज उन्हें लगा कि उनका पढ़ना निरर्थक रहा। यदि उनके उद्देश्यों की गहनता में उन्होंने केवल नारी के प्रति वितृष्णा उकसानेवाली, दस्युवृत्ति उभारनेवाली कापुरुषता के प्रोत्साहन को ही ग्रहण किया तो, व्हाई? दिस मस्ट बी ए केस आफ फूड प्वाइज़निंग?

"फिर क्या हुआ पापा?"

उन्होंने चौंककर सुना।

जब यह नाम-मात्र की रानी उनके घर बिना बुलाए पहुंच गई और नौकरों की दया के सहारे सत्ताहीनता का जीवन बिताने लगी, तब उन्हें अचानक अनुभव हुआ, वे अपने मित्रों की निगाह में गिरते चले जा रहे हैं। उनसे किसीने कुछ भी नहीं कहा, न किसीने रानी के बारे में जिज्ञासा प्रकट की। परन्तु फिर भी दिन पर दिन वे एक हीनता की भावना से दबने लगे। उन्हें जान पड़ा, उनके मित्र उनके घर आने से कतराने लगे हैं। क्लब में कई बार पहुंचने पर उन्होंने देखा, महिलाओं और उनके साथियों में होनेवाला वार्तालाप अकस्मात् रुक गया, लोग एक क्षण स्तब्ध रहे, फिर उल्लास की हंसी और अप्रत्याशित-सा स्वागत, "आइए जनाब,

आइए ! कल कहां रह गए थे ?"

गंगाधर से उनकी घनिष्ठता हो गई थी। नया होते हुए भी डाक्टरी के क्षेत्र में उसने काफी ख्याति कमा ली थी। उसकी मित्रता से इन्हें संतोष होता था, बातचीत से प्रेरणा मिलती थी। दोनों ने तै कर लिया था, डाक्टरी और इन्जीनियरिंग के विषय पर कभी आपस में बात न करेंगे। इसलिए जब दोनों मिलते, एक-दूसरे को ताज़गी देने के लिए मिलते।

रानी के आ जाने के बाद वे एक मानसिक तनाव के शिकार हो गए थे। वह तनाव धीरे-धीरे उन्हें कसता जा रहा था। तभी एक दिन उस कसाव के खिंचे हुए धागे अचानक टूट गए। गंगाधर ने धीरे से कहा, "सुना है, मिसेज़ रजनीकान्त आजकल यहीं हैं।"

तब उन्होंने नया-नया पीना सीखा था। पीने में पीने का सुख मिलता था, एक चुभनेवाली लत को संतुष्ट करने-भर का नहीं। गंगाधर की इस बात ने उनके मुंह, गले और पेट तक ऐसी कडुवाहट भर दी कि उन्हें जान पड़ा, सामने ग्लास में रखी हुई शराब मिर्च का एक घोल-भर है। उसी कडुवाहट के साथ उन्होंने मुंह की लार घूटी और कहा, "तुमने ठीक ही सुना है।"

दोनों कुछ देर चुप रहे। फिर गंगाधर ने कहा, "चलो, इससे सोसाइटी को यह तो मालूम हो गया कि तुम शादी-शुदा हो।"

वे जल-भुनकर बोले, "मैंने यह किससे कहा कि मैं शादी-शुदा नहीं हूं।"

उसी अन्दाज़ में गंगाधर ने उत्तर दिया, "तुमने किससे यही कहा कि तुम शादी-शुदा हो ही ? सब अपने-अपने मन से अटकल लगाते रहे हैं।"

थोड़ी देर दोनों चुप रहे। इस बार रजनीकांत ने कहा, "लोग अब

भी मेरे बारे में अटकल ही भिड़ा रहे हैं। क्यों ? क्या कहते हैं ?"

गंगाधर ज़ोर से हंसा। सिगरेट का एक कश खींचकर धुएं के साथ-साथ उसने अपनी बात निकाली, "विवाहितों के बीच तुम्हारी इज़्ज़त बढ़ गई है। अविवाहित तुमसे निराश हो चुके हैं। अच्छा हुआ, सीता दत्त का ट्रांसफर पहले ही हो गया है।"

चेतावनी के स्वर में वे बोले, "देखो गंगाधर, सीता के बारे में मज़ाक नहीं होगा।"

उत्तर, "घबराओ नहीं, मैं उसके बारे में मज़ाक नहीं करूंगा। वह तो तुम्हीं थे जो इतने दिन उसके साथ मज़ाक करते रहे।"

गंगाधर ने फिर कहा, "ठीक ही तो था। वह आज की सीता थी, अपने राम को घर से निकाल चुकी थी, उसी तरह तुम तब के राम थे, बिना किसीके कुछ कहे ही अपनी सीता को वनवास दे चुके थे। सीता दत्त को तुमसे कौन-सी शिकायत हो सकती है ?"

व्यंग के साथ अंग्रेज़ी में वे केवल इतना ही बोले, "तुम बहुत-सी बातें जानते हो।"

जिस दिन रानी आई थी, उसीके दूसरे दिन आफिस जाने के पहले उनके मन में आया, अगर वह बाहर निकल आए ? किसी परिचित के यहां पहुंचकर अपनी बातें बताने लगे ? विभागीय अधिकारियों से जाकर उनके अत्याचार की शिकायत करने लगे, तो ? अगर वह गांव से यहां तक दौड़ती हुई आ सकती है तो यहां इस तरह घूम भी सकती है।

इस बारे में वे जितना ही सोचते गए उतना ही रानी की ओर से उनका संशय गहरा होता गया। यहां तक कि आफिस जाने के लिए पोर्टिको में कार स्टार्ट कर देने के बाद भी उन्होंने उसे आगे नहीं

बढ़ाया। कुछ देर चुपचाप अपनी सीट पर बैठे रहे, फिर गाड़ी की स्विच बंद करके नीचे उतर आए।

घर आकर उन्होंने देखा, अपने कमरे में रानी चुपचाप लेटी हुई है। उन्होंने उस कमरे से मिले हुए दूसरे कमरे का दरवाज़ा बाहर से बन्द कर लिया। फिर इन दो कमरों के और गुसलखाने से मिले हुए भाग के सभी दरवाज़े इस तरह बाहर से बन्द करा लिए कि रानी मकान के बाहर नहीं निकल सकती थी, आंगन ही में आ सकती थी। आंगन के बाहरी दरवाज़े को बन्द करके उन्होंने ताला लगा दिया और बिना कुछ कहे हुए कार फिर से स्टार्ट करके आफिस चले गए।

यह क्रम तीन दिन चलता रहा। फिर भी रानी ने कोई शिकायत नहीं की। उसने यह तक नहीं जताया कि उसे अपनी कैद का ज्ञान है भी या नहीं।

तीन दिन बाद उन्होंने सभी दरवाजे खुले छोड़ दिए। परन्तु तब उसने यह भी नहीं जताया कि उसपर इस छूट का कोई प्रभाव पड़ा है। इस समय गंगाधर से जब उन्होंने कहा, "तुम बहुत-सी बातें जानते हो", तभी आंगन के बाहरी दरवाज़े पर लटका हुआ वह मजबूत थंडर ताला उनकी आंखों के सामने खामोशी से झूमने लगा।

क्या गंगाधर यह भी जानता है ? वे सोचते रहे।

और, दूसरी शाम का मानसिक कसाव !

गुसलखाने से निकलते ही नौकर ने कहा, "डाक्टर साहब और उनकी मेम साहब मिलने आए हैं। ड्राइंग रूम में बैठाल दिया है।" वे होंठों ही होंठों में बुदबुदाए, "कमीना।" नौकर से पूछा, "मेम साहब को बताया ?"

कहते ही नौकर के सामने वे झिझक-से गए, जैसे किसीने उन्हें ऊपर-नीचे दबाकर बौना बना दिया हो।

सहसा उनके मन में एक अजब-सी प्रतिहिंसा जागी। वे जैसे अपनी सामाजिक आत्महत्या करने के लिए तैयार हो गए। पहले उन्होंने सोचा था, मिसेज़ गंगाधर अन्दर जाकर रानी से बातें करती रहेंगी। वे गंगाधर से अलग बात करेंगे। हंसकर कह देंगे, वे परदा करती हैं। तुमसे झिझकती हैं। पर उन्होंने इस विचार को मन से खींचकर निकाल दिया। रानी के कमरे के पास पहुंचकर आदेश-सा देते हुए बोले, "बाहर ड्राइंग रूम में चलो। कुछ लोग तुमसे मिलने को बैठे हैं। जल्दी करो!" कुछ देर बाद वे चारों ड्राइंग रूम में बैठे हुए एक ड्रामा-सा खेल रहे थे। अस्वाभाविक वातावरण। एक असफल, अनुचित-सी शाम। रानी मिसेज़ गंगाधर के पास बैठी थी। मिसेज़ गंगाधर पढ़ी-लिखी, सुशील मध्यम-मार्गी युवती थीं। पत्नी की कल्पना करने पर रजनीकान्त की आंखों के आगे प्रायः उन्हींका रूप उभरता। भीतर ही भीतर उनके प्रति रजनीकान्त की आसक्ति, जो प्रोत्साहन और अनुकूल स्थिति के अभाव में कभी सामने नहीं आ पाई, एक करुण उपेक्षा के रूप में बदल चुकी थी। किन्तु आज मिसेज़ गंगाधर को रानी के पास बैठे देखकर उनका मन तीखी-सी खीभ से आविष्ट हो गया। वे दोनों को ही घोर शत्रुता और घृणा की दृष्टि से देखने लगे।

रानी देखने में भली थी पर उनकी निगाह उसके रूप पर नहीं, कपड़ों पर घूमती रही। मिसेज़ गंगाधर के सामने उसके कपड़े पहनने का तरीका, बैठने की मुद्रा सभी कुछ अक्षम्य-सा जान पड़ने लगा। और अब गंगाधर ने बात शुरू की, "आजकल तो गांव में ईख के रस और मटर की बहार होगी," तो उन्हें लगा, वे रानी और गंगाधर दोनों का गला घोंट सकते हैं।

मिसेज गंगाधर ने अपने पति से कहा, "याद है न, परसाल इन्हीं दिनों जब हम लोग पिकनिक पर गए थे। डाकबंगले का चौकीदार दो घड़े रस ले आया था।"

फिर रबी की फसलें, जाड़े के होनेवाले व्रत-त्योहार, घी, छाछ, दूध, छप्पर और खपरैल के मकानों का भेद, लोकगीत, काजल तैयार करने की सनातन विधि, बच्चों को दी जानेवाली जायफल की घुटी, सीरप मिनेडेक्स की हीनता, मुर्रा भैंसें, देशी गाएं, देहात की पिकनिक का प्रोग्राम—कुछ नहीं बचा। गंगाधर-दम्पति रानी से लगभग एक घंटा बात करते रहे। खानसामा ने चाय लाकर सामने लगा दी, प्यालों में डाल दी। रानी उसका छुआ नहीं खाती-पीती, जानकर भी उस विषय को उन्होंने वहीं छोड़ दिया। बातें लोक-कथाओं पर अटकी हुई थीं, आगे बढ़ीं।

रजनीकान्त का मन तीनों के प्रति कटुता से भर गया। एक बार भद्रता के नाते किसी मित्र के गन्दे, कुसंस्कृत बच्चे को गोद में चढ़ाकर उन्हें खेलते रहना पड़ा था। पर उस अभिनय ने उनके मन में न जाने कितनी खीझ भर दी थी। इस कल्पना-मात्र से कि गंगाधर के मन में वैसी ही उपेक्षा और खीझ भरी होगी, वे सोचने लगे। ये दोनों इस प्रकार रानी से बात करके उसका इतनी देर से उपहास कर रहे हैं। यह उनका प्रच्छन्न अपमान है।

क्षमा मांगकर वे दो मिनट के लिए बाहर निकल आए। इस अपमान की भावना ने थोड़ी देर के लिए उनके शरीर तक को विचलित कर दिया। साथ ही साथ रानी की यह बात उन्हें किसी व्यंग की क्रूरता के साथ कुरेदने लगी कि गंगाधर-दम्पति की मंशा को बिना समझे हुए वह उनकी बातों में रस ले रही है, अपने-आपको भूलकर उनसे बात कर रही है।

आज इतने सालों के बाद, रात के इस सन्नाटे में उनके मन में कई सवाल उभरते हैं। गंगाधर की उस चेष्टा को उन्होंने अभिनय क्यों समझा? बाद में कुछ भी तो नहीं हुआ जो उसे अभिनय बताता?

और जब रानी गांव चली गई तो मिसेज़ गंगाधर की शिकायत: "आपने क्यों जाने दिया उन्हें? हम लोगों ने परसों ही तो पिकनिक पर जाने को तै किया था। पता बताइए उनका, मैं चिट्ठी लिखूंगी। वाह! यह भी कोई बात हुई!"

आज इतने सालों के बाद, रात के इस सन्नाटे में वे मन ही मन स्वीकार करते हैं कि यह अभिनय-मात्र न था। शिक्षा-दीक्षा के फर्जी संस्कारों को तोड़कर दो मित्रों में अपने आप फैलनेवाली स्नेह की गरिमा थी। अब तक तो सभी कुछ स्पष्ट हो चुका है।

"वे मेरे साथ पंद्रह-बीस दिन रहीं और फिर गांव चली गईं।" उन्होंने प्रभा को बताया।

उसने पूछा, "आपने उन्हें जाने के लिए कहा होगा?"

वे तीव्रता से बोले, "नहीं बेटी, मैंने उनसे कुछ नहीं कहा, मैं न जाने कैसा हो गया था। सोच लिया था, वे घर में चुपचाप रहती रहें। हम दोनों एक-दूसरे के रास्ते में न टकराएं, और जब हम दोनों ने इस स्थिति से लगभग समझौता कर लिया था तभी एक दिन वे वापस चली गईं। न जाने क्यों!"

बात समाप्त करते-करते उनकी आवाज़ धीमी हो गई।

अपनी कन्या के आगे आत्मस्वीकृति के इस एकान्त क्षण में भी वे पूरी बात न कह सके। वे जानते थे कि रानी क्यों वापस चली गईं। पर उस कारण को स्पष्टतया उन्होंने कभी अपने-आप तक से नहीं बताया।

अभा को कैसे बताते ?

गंगाधर और उनकी पत्नी को रात की गाड़ी से बाहर जाना था। उन्हें स्टेशन तक वे कार से पहुंचाने गए। गंगाधर की पत्नी ने आग्रह के साथ कहा था कि रानी भी साथ चली चले। वे उसे लेकर गंगाधर के यहां पहुंचे। गंगाधर-दम्पति कार की पिछली सीट पर पहले ही बैठ गए। रानी इनकी बगल में बैठी। उन दोनों को स्टेशन पहुंचाकर, गाड़ी के लेट आने की सम्भावना सुनकर, गंगाधर के ही आग्रह से गाड़ी आने की प्रतीक्षा किए बिना ही, वे वापस लौट पड़े। बगल में रानी चुपचाप बैठी रही। वे भी चुप थे। न जाने किस भावना से, उन्होंने कार शहर से बाहर एक सूनी सड़क पर मोड़ दी।

जाड़े की झिलमिल चांदनी। कुहरा नहीं था। हवा नहीं थी। सीमेंट कांक्रीट की चिकनी सड़क पर चांदनी के फैले हुए परिधान में छाया के काले धब्बे दूर से चमकते थे। उन्होंने मोटर की हेडलाइट बुझा दी। धीरे-धीरे ड्राइव करते रहे।

डा० सीता दत्त का पत्र उन्हें उसी दिन मिला था। "...सुना है, श्रीमती रजनीकांत आजकल वहीं हैं। तो एक श्रीमती रजनीकान्त भी है! मुझे खुशी हुई कि तुम वैसे वयस्क शिशु नहीं, जैसा मैं समझती थी। कोई चिड़िया मेरे कान में फुसफुसा गई है कि श्रीमती रजनीकान्त के वनवास की अवधि खत्म हो गई है। तुम दोनों में सुलह हो गई है। तुम दोनों को हार्दिक शुभेच्छाएं। इतनी जरा-सी जिन्दगी में ही, विवाह, विच्छेद, संधि, सब कुछ हो गया। तुम कितने अनुभवी हो! तुम्हें कितना झेलना पड़ा! फिर भी, अन्त भला तो सब कुछ भला। चलो, मैं तुम्हारी ओर से निश्चिन्त हुई!"

वे जानते थे, सीता की ओर से सब कुछ समाप्त हो गया है। बिना कुछ कहे ही उन्होंने उसे अपने अविवाहित, अनुभवहीन, 'वयस्क किशोर' होने की धारणा दे दी थी और उसीके बदले में वह उनके ऊपर शासन करती थी। कितना मीठा, कितना प्यारा शासन! उस शासन में अपने को डालकर उन्हें जान पड़ता, जीवन ईथर की लहरों पर बहकर आते हुए चंचल आर्केस्ट्रा-सा, कितना हल्का, कितना रूमानी हो गया है! फूलों के रंग कुछ और शोख हो गए हैं! लॉन की घास कुछ और मुलायम है! आसमान पहले से ज्यादा नीला है!

पर अब?

वे जानते थे, सीता जैसे स्वभाव की स्त्री उनके इस छल को कभी क्षमा नहीं करेगी। उन्होंने उसे खो दिया है।

उन्हें सामने किसी आदमी का अनियंत्रित शोर सुन पड़ा। वे एक बैलगाड़ी से कार लड़ा चुके होते यदि गाड़ीवान ने अपनी गाड़ी को आकस्मिक रूप से मोड़ न दिया होता। वह कार में लाइट न होने के कारण गला फाड़कर उन्हें कोस रहा था। उन्होंने गाड़ी की रोशनी जलाई। चांदनी का जादू, भावनाओं का मायाजाल एकदम से दूर हो गया। सीमेंट की सड़क पर कार की स्पष्ट, भौतिक, मैकैनिकल रोशनी फैल गई। कुछ देर के लिए उनके दिमाग में एक जड़ता-सी रही और फिर उनका मन बगल में बैठी हुई रानी को कोसने लगा। उसीके कारण जीवन का वह हल्कापन, वह आयासहीनता समाप्त हो चली है। अवाञ्छित यथार्थ का संक्रमण शुरू हो गया है।

उन्होंने रानी की ओर देखा। वह खिड़की से बाहर देख रही थी। एकान्त सड़क, चांदनी, कार के शक्तिपूर्ण इंजन की निरन्तर भन्नाहट, किसीने भी उनके मन की तिक्तता को कम नहीं किया। रानी की ओर देखते ही उनकी निगाह में साधारणता और रुचिहीनता के साथ पहने

हुए कपड़े चुभ गए। उन्होंने ऐक्सिलेरेटर को जोर से दबा दिया। गाड़ी की रफ्तार तेज हो गई।

उनके एक वकील मित्र ने एक बार समझाया था, असंयत रूप से मोटर चलाने की (रैश ड्राइविंग की) परिभाषा—

रैश ड्राइविंग स्पीड से नहीं आंकी जाती। ६५ मील फी घंटे की चाल से कार चली जा रही हो और कोई उसके नीचे कुचल जाए, यह रैश ड्राइविंग का ही परिणाम नहीं हो सकता। रैश ड्राइविंग का निर्णय परिस्थितियों पर निर्भर है। सड़क खराब है, मोटर के ब्रेक विश्वासयोग्य नहीं हैं, ट्राफिक काफी है, लोगों को ट्राफिक-रूल्स का बोध नहीं है, इस हालत में यदि कार दस मील फी घंटा भी चली तो वह रैश ड्राइविंग हो सकती है। इसके विपरीत, आप कल्पना करें, चांदनी रात है, सड़क वीरान है, मोटर का इंजिन अच्छी हालत में है, ब्रेक्स ठीक हैं, टायर नये हैं, बगल में किसीकी उत्तेजक मौजूदगी है और सुनसान में आप सत्तर मील की स्पीड से मोटर चला रहे हैं, यह रैश ड्राइविंग नहीं, यह आनन्द और उल्लास की ड्राइविंग है। प्लेजर ड्राइविंग।

मन पर कटुता की एक दूसरी पर्त जमी। दाहिने पैर के पंजे का दबाव ढीला पड़ गया, गाड़ी की रफ्तार कम हो गई।

खड़, खड़, खड़, खड़।

कुछ आवाज-सी हो रही थी। वे अपनी कल्पना में खोए आगे बढ़ते रहे। अगली सीट पर, उन्हींकी बगल में सीता दत्त भी बैठकर कई बार प्लेजर ड्राइव पर निकली थीं। उस समय वे अपनी ड्राइविंग की योग्यता दिखाने को कितने व्यग्र रहते थे। उसकी कमर को, कंधों को, बालों को अपने हाथों के जाल में अनेक चेष्टाओं द्वारा गुम्फित करते। उनकी आंखें, होंठ, उंगलियां, सीता में खो जातीं। स्टियरिंग कभी उंगली की कोहनी के सहारे घूमता, कभी निराधार चलता। वह इन्हें झिड़क-

कर कहती, "ऐक्सिडेंट ! सामने देखो ।" पर वे सामने देखने की क्षमता खो चुकते थे । एक्सिडेंट फिर भी नहीं होता था ।

खड़-खड़-खड़-खड़-खड़-खड़ ।

कभी-कभी वह उनके हाथों को अपने ऊपर से उठाकर स्टियरिंग पर जमा देती, उनके चेहरे को सड़क की ओर उन्मुख कर देती, उनके बिखरे हुए बालों को अपनी उंगलियों से संवार देती, होंठों को हवा के हल्के झोंके की अस्पष्ट, अयाचित गति से चूम लेती और फिर सीधी बैठकर बड़े व्यावसायिक ढंग से पूछती, "तो तुम्हारी नई नहर कब तक बन जाएगी ?"

खड़-खड़-खड़ ।

कुछ चौंककर उन्होंने अपनी बगल में ध्यानपूर्वक देखा । रानी जिस दरवाज़े से सटी बैठी थी, वह ठीक से बन्द नहीं था । उसीसे खड़खड़ाहट हो रही थी ।

बिजली की तरह उनके दिमाग में कौंधा, यह दरवाजा खुला है । रानी उससे सटी हुई बैठी है । अगर वह गिर जाती तो ? अगर वह गिर जाए तो ?

उनके दिमाग में खड़-खड़, खड़-खड़ का क्रूर शब्द किसी पत्थर के धक्के की तरह घूमने लगा । शिरा-शिरा उसके बोझ से पिसने लगी । गाड़ी की रफ्तार तेज़ होने लगी । स्टियरिंग व्हील पर टिकी हुई हथेलियों से पसीना छूटने लगा । अगर वह गिर जाए, तो ? खड़खड़ाहट बढ़ रही थी । उनके शरीर का ज़रा-सा लापरवाह घुमाव एक धक्के का रूप ले सकता है । सारी समस्याएं ज़रा-सी दुर्घटना की चोट पाकर हमेशा के लिए सो जाएंगी । खड़, खड़, खड़, खड़ । स्पीड बढ़ जाने से दरवाज़े की आवाज़ भी बढ़ गई थी । उन्हें अपने ऊपर विश्वास नहीं रहा । उन्हें जान पड़ा, बिना किसी चेतन विकार के अपनी सीट से वे कुछ आगे बढ़ आए हैं, ऐक्सिलरेटर अपने-आप दबता जा रहा है । रानी के ऊपर उनके

जिस्म का दवाव कुछ और भारी होने लगा है। वे बाईं ओर और भी झुक सकते हैं। क्षण-भर के लिए उनके रोंगटे खड़े हो गए।

उन्होंने अचानक ब्रेक लगाया। गाड़ी झटके के साथ खड़ी हो गई। तेजी से उन्होंने रानी की ओर का दरवाजा खोल दिया। उससे कड़ी आवाज में कहा, "इधर झुको।" दरवाजे से अपने को हटाकर वह उनकी ओर झुकी। उन्होंने जोर से दरवाजे को खींचकर बन्द कर दिया और एक वज़नी सांस खींचकर बोले, "गाड़ी में बैठने के लिए भी तमीज़ चाहिए।"

और उसीके दो दिन बाद।

वह शनिश्चर की रात थी और पूरी घटना उन्हें याद तो है, पर उसमें किसी स्वप्न की सी अस्पष्टता है, किसी दुःस्वप्न की सी शूलाग्रता।

वे उस दिन पोकर में हारते रहे और व्हिस्की पीते रहे। जब क्लब के काफी मेम्बर चले गए और पोकर बन्द हो गया, तब उनके अंतरंग मित्रों में से एक ने कहा, "बाहरी लोग तो चले गए। अब तो घर के लोग रह गए हैं। जस्ट दि फेमिली। आओ, वीक एण्ड मनाएं।"

वे फिर पीने लगे।

रोशनी और अंधेरे की झिलमिल लहरें! दाएं-बाएं भागती हुई सड़क! हवा में लपलपाते हुए बेतों-से बिजली के खम्भे!

नीचे की ओर झुकी आती हुई पेड़ों की शाखाएं!

उन्हें कुछ ऐसा ही याद रह गया है। घर तक पहुंचने का पूरा विवरण उन्हें याद नहीं।

शायद खानसामा ने जूते उतारे। टाई और कोट भी उतार दिया और कुछ और सम्भव या आवश्यक न समझ उन्हें पतलून और कमीज

पहने ही चारपाई पर लिटा दिया।

वे लेटे हुए अर्धजड़ता की स्थिति में क्या सोचते रहे, क्या कहते रहे, कोई नहीं जानता। कमरे में अंधेरा था। उस वातावरण में उन्हें लगा, सब कुछ दब रहा है, उन्हें दबा रहा है। प्रकाश आधा खत्म हो चुका है, अंधेरा आधा गल चुका है, उनकी चेतना आधी से अधिक जड़ हो चुकी है, हवा भारी हो रही है। गला रुंध रहा है, छाती पर वज़न-सा फैल रहा है। सांस फूल-सी रही है…।

शायद उन्होंने जोर-जोर से सांस लेने की कोशिश की। शायद उन्होंने रह-रहकर कराहना शुरू किया हो। थोड़ी देर में उन्हें अपने मत्थे पर कुछ चिकना-सा, ठंडा-सा लगा। अधखुली आंखों के धुंधलके में उन्होंने रानी को पाया। उनके मत्थे को सहलाती हुई व्यग्रता के साथ वह फूंक रही थी, "कैसी तबियत है, तुम्हारी ? क्या हो रहा है तुम्हें ?"

उन्होंने आंखें फैलाकर उसे देखा। प्रकाश की एक आड़ी-तिरछी रेखा उसके बाएं गाल पर गिर रही थी। उन्होंने आंखें फाड़कर उसी ओर देखा। क्या कहा, उन्हें याद नहीं, पर वह देखना उन्हें याद है। अकस्मात् उस घुटन, दबाव, वज़न, अर्धचेतना के बवण्डर को नीचे छोड़कर उनकी उत्तप्त वासना किसी रॉकेट की तरह ऊपर उठने लगी। उन्हें यह भी याद है, लेटे ही लेटे, हाथ को रही-सही ताकत के सहारे उठाकर उन्होंने रानी की कमर से लपेट लिया, उसे अपने ऊपर गिरा लिया, दूसरे हाथ से उसके सिर को अपनी छाती में भींच लिया।

उस अर्ध-अंधकार और अर्धचेतना के कुहासे को भेदकर रानी की वह आर्त, घबराई हुई, डरी हुई निगाह उनके मन को आज तक कचोटती चली आ रही है। उसने जोर से अपने को खींचकर उनसे दूर हटा लिया और कहा, "सो जाओ।"

छाया की तरह वह कमरे के बाहर चली गई और एक सिमटती,

फैलती, विकृत छाया ही की तरह उसके पीछे-पीछे वे भी उसके कमरे में जा पहुंचे। जाते ही उन्होंने दरवाज़े को अन्दर से बन्द कर लिया।

उस दृश्य की स्मृति-मात्र से वे आज भी कांप उठते हैं। अनर्गल प्रलाप, हिचकियां, कै।

रानी की परिचर्या। वही चिकना स्पर्श। वासना का उद्दाम उफान। उन्होंने अपने हाथ से उसकी कमर फिर लपेटी। उसकी उष्णता ने उन्हें पागल बना दिया।

रानी ने ताकत के साथ अपने को दूर खींच लिया, अपमान और विक्षोभ को एक-एक अक्षर से उगलती हुई बोली, "खबरदार, जो मुझे छुआ। जाओ, अपने कमरे में जाओ।"

उन्हें केवल रानी के ही शब्द याद हैं। अपने शब्द भूल गए हैं। केवल जो किया वही नहीं भूल पाते।

"...............।"

"मैं ? मैं तुम्हारी कोई नहीं। तुम्हीं तो कहते हो।"

"मैं तुम्हारी कोई नहीं, तो मुझे छूते क्यों हो ?"

"मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ? मुझे छोड़ दो, छोड़ दो।"

"...............।"

"मुझे छोड़ो..............छोड़ो।"

पर उन्होंने साड़ी खींचकर उसके शरीर से अलग कर दी थी। अंधेरे कमरे में असंयत कदमों पर हिलता-डुलता हुआ उनका भारी आकार उन्हीं-के मन में एक अजीब-सी दानवीयता का संचार कर रहा था। उन्होंने रानी की बांह को क्रूरतापूर्वक मरोड़ा। उसके मुंह से एक हलकी-सी चीख निकली। एक धक्का देकर उन्होंने उसे पलंग पर ढकेला और उसी वेग में खुद भी पलंग पर लुढ़क गए।

उन्हें उस शरीर की उष्णता की याद है और उस अस्वाभाविक

कंपकंपी की भी, जो रानी को आक्रान्त कर रही थी। उन आंसुओं की भी, जो उसके गाल, ठुड्ढी, गले को भिगोकर गीला कर रहे थे। किसी भूखे जानवर की तरह उन्होंने उसके ब्लाउज को फाड़ना शुरू किया, पर रानी की बांहें जैसे बर्फ हों, पत्थर हों। वे उनकी उंगलियों पर आकर जड़ हो गईं। जैसे वह खुद पत्थर की हो गई हो। उसके निश्चेष्ट हो जाने पर, अपने आकार की दानवीयता में उन्होंने उस पथराई हुई देह को समेट लिया, निगल लिया, अपने में उन्हें इतने प्रचण्ड उत्ताप का अनुभव हुआ कि वे उसके गाल, होंठ, स्तन, जांघ, सारे शरीर को, उसकी सत्ता को चबा-चबाकर निगलते रहे।

अपनी भूख मिटाकर उन्होंने कितनी देर बाद संतोष की सांस ली और कितनी देर बाद, कब सो गए, उन्हें याद नहीं।

दूसरे दिन लगभग दस बजे सोकर उठने पर उन्होंने देखा, कमरे का फर्श धुल चुका है, कै के निशान मिट चुके हैं, गीला तकिया और गन्दे कपड़े उनके बिस्तर से संभालकर निकाल लिए गए हैं। उन्हें याद पड़ा, यह उनका नहीं, रानी का कमरा है। पर रानी का कोई चिह्न शेष नहीं है।

खानसामा ने बताया, "नौकर को साथ लेकर वे सबेरे छः बजे की गाड़ी से गांव चली गई है।"

करवट बदलकर उन्होंने थकी हुई, हारी हुई आवाज में पूछा, "कुछ कह गई हैं?"

खानसामा ने बताया, "कुछ नहीं।"

"वे गांव चली गईं और उसीके कुछ महीनों बाद तुम्हारे नाना ने मुझे सूचना दी, तुम्हारा जन्म हुआ है। तुम बहुत कमजोर थीं। उन्होंने

लिख दिया था, मां के ही साथ तुम्हें रखने की जरूरत है। इसलिए दो साल तक तुम वहीं रहीं। फिर मैंने तुम्हें और तुम्हारी मां को लाने के लिए चिट्ठियां लिखनी शुरू कीं। पर तुम्हारे नाना ही इसे टालते रहे। पता नहीं, तुम्हारी मां की क्या प्रतिक्रिया थी। कुछ दिन बाद तार से मुझे उनकी बीमारी का समाचार मिला। मैं और गंगाधर दोनों गांव पहुंचे, पर टाईफाइड अपने सांघातिक रूप पर आ चुका था। भाग्य ने मुझे जिस दंड का अधिकारी समझा, उसे मेरे मत्थे पर लादने में कोई दया नहीं दिखाई। वे चली गईं। मैं अपने पश्चात्ताप को प्रकट नहीं कर सका। एक अधूरी जिन्दगी का बोझ ढोने के लिए जिन्दा रह गया।"

प्रभा ने सोचा :

तो, मैं यह हूं। घृणा, असंगति, कटुता, पीड़ा, निराशा की संतान। कुरूपता के ढेर से काल ने मुझे निसर्ग के हाथों खींचा है, और मैं अब तक इस सबसे अनजान रही !

पर जान लेने से ही क्या हुआ ? जो अंकिल विनायक कहते थे, बात उतनी ही है। पापा ने मां का तिरस्कार किया। उन्हें अपने पिता के यहां छोड़े रहे। उन्हें अपनी उन्नति की सामाजिक बाधा मानते रहे। घर आने पर भी उनका तिरस्कार किया और उनके चले जाने पर उन्हें वापस लाने का कोई गम्भीर प्रयास नहीं किया। और आज भी वे क्लब में ब्रिज खेलते हैं, व्हिस्की पीते हैं, हंसते हैं, शिकार करते हैं, और पश्चात्ताप से जल रहे हैं। प्रायश्चित नहीं कर पाते, इसलिए दुःखी हैं।

उसने रजनीकान्त को अपरिचित की दृष्टि से देखना चाहा, पर कनपटी पर सफेद होते हुए बाल, माथे की झुर्रियां, कुर्सी पर निढाल होकर गिरा हुआ शरीर, बुझा हुआ सिगार, कम हवा में सीत्कार करता हुआ पेट्रोमैक्स, सबने उसे पहलेवाली सहृदयता से भर दिया। सिर्फ एक शब्द उसके मन के भीतर अंधेरे में दिशा भूले हुए, अंतरिक्ष में तेजी से

चक्कर काटते हुए पक्षी-सा, फड़फड़ाता रहा : दुर्भाग्य ! केवल दुर्भाग्य !

उसकी दृष्टि सहज हो गई। बोली, "पापा, इन्हीं असंगतियों का नाम जीवन है। इन्हें भूल जाइए। अब सो जाइए।"

उन्होंने सोचा :

असंगति की यह संतान ! इसीके सहारे आज यह जीवन विशृंखल होने से बच रहा है। नहीं तो, पता नहीं उसका क्या होता।

निराधार जीवन नीचे की ओर लड़खड़ाता हुआ चलता। एक अनर्गल, सौन्दर्य का भ्रम उत्पन्न करता हुआ, अपने-आपसे वंचित, विमुख-सा भटकता रहता, किसी भी दिशा में बहनेवाले झरने की तरह, किसी भी ओर उड़े हुए घायल विहंग की तरह, शरद् के रीते बादलों की तरह !

वे उठ खड़े हुए। प्रभा से बोले, "तुम भी जाओ, बेटी, सो जाओ। आधी रात बीत चुकी होगी।"

प्रभा के चले जाने के बाद उन्होंने सिगार जलाया, धीरे से दरवाजा खोला और बाहर आ गए। धीरे-धीरे टहलते हुए वे डाकबंगले के फाटक तक पहुंच गए। यहां से दिन में गांव की आबादी का एक भाग दिखाई देता था। इस समय बांस के घने झुरमुट किसी किले की ऊंची-नीची दीवाल की तरह खड़े हुए थे। उनके बीच से गांव में एकाध जगह जलनेवाले अलावों की अग्निशिखाएं कांपती हुई नजर आती थीं। उन्हीं शिखाओं पर उनकी निगाह थोड़ी देर अटकी रही, फिर वह किसी मकान में जलते हुए चिराग पर जाकर ठहर गई।

चिराग जल रहा था, हिलते हुए बांसों के झाड़ कभी-कभी उस प्रकाश को ढंक लेते थे, पर कुछ देर में वह फिर दीख जाता था। वे स्थिर होकर

कुछ देर यह आंख-मिचौनी देखते रहे।

आज से अट्ठाईस-उनतीस साल पहले।

तब वे इन्टरमीजिएट में पढ़ते थे। मन में आदर्शवाद भरा हुआ था। जिस वातावरण में वे अब तक पले थे, उसकी निष्ठा में उन्हें सन्देह न था। रानी उनके पिता के यहां थी, वे शहर में रहते थे, चिट्ठियां लिखकर उस याद को कविता का रूप देने का उन्हें अधिकार न था।

दशहरे की छुट्टियों में वे घर आए हुए थे। घर के अन्दर दालान में मां के साथ चारपाई पर बैठे बातें कर रहे थे। एकाध बार रानी घूंघट काढ़े हुए सामने से निकल गई। पीली साड़ी। उसकी आभा में झलकते हुए दो साफ, चिकने पांव। न जाने कितने कोमल दिखे। चांदी के पतले पायल, बहुत ही अस्पष्ट-सी झनक के साथ कान में गूंजे। (शरद् का अपराह्न और शाम मधुमक्खियों की निरन्तर गुंजार के साथ उस अस्पष्ट झनक को सुनते हुए बीती। एक क्षण की गूंज इतने विस्तार के साथ इतने समय को अपने में समेट सकती है, वे खुद आश्चर्य करते रहे।)

उन पांवों की कोमलता ने उनके मन में न जाने कितनी आत्मीयता, कितना ममत्व भर दिया था। बातचीत का सूत्र कई बार खंडित हो गया। मां कुछ सोचकर उठीं, मकान में दूसरी ओर चली गईं।

उन्होंने अपने आसपास देखा, रानी का पता न था। सामने आंगन के उस पार दरवाजे की ओट से दो आंखें उनकी ओर झांक रही थीं। दो आंखें, बड़ी-बड़ी, काली, लम्बी पलकों की छाया में सुरक्षित, हंसती-सी, खेलती-सी। बालों की एक लट, साड़ी के पीले पल्ले की एक झलक—उन्होंने इतना ही देखा—वे उठकर कमरे की ओर गए। दरवाजा खोला, पर एक दबी हुई हंसी, और लज्जा में सनी हुई आवाज, "मां!" पायलों की वही अस्पष्ट झनकार। रानी कमरे के एक कोने में जा छिपी थी। उन्होंने मुड़कर देखा, मां सचमुच ही आंगन में आ गई हैं। वे वापस लौट

आए।

बाद में उन्होंने जो कुछ भी सोचा हो, पर उस समय रानी का घूंघट, पायलों की अस्पष्ट झनकार, लज्जा, दबे हुए स्वर में 'मां' की परिहास-मिश्रित चेतावनी और उनका फिर अपनी जगह पर आ जाना—कुछ भी अस्वाभाविक नहीं जान पड़ा था। मन में किसी असफल साहसिकता की, उत्कंठा की, माधुर्य की छाप फैल रही थी।

और उसी रात उनके शयन-कक्ष में ऐसा ही दिया टिमटिमा रहा था, जैसे यह आज सामनेवाला, जो बांसों के झुरमुट के पार अपनी क्षीण किरणों को आंख की ओर फेंक रहा है। रानी उनसे शहर के बारे में पूछ रही थी, "थियेटर कैसा होता है?"

"सुनते हैं, वहां लड़कियां भी तुम लोगों के साथ पढ़ती हैं।"

"कैसी होती हैं वे?"

"सिर पर पल्ला नहीं डालतीं?"

"यह बैडमिण्टन कैसे खेला जाता है?"

"भला मुझे भी आ जाएगा? मुझे भी सिखा दोगे न? मैं तुम्हारे साथ खेला करूंगी।"

वे फाटक से मुड़कर ओस से भीगी सड़क पर लौट रहे थे। निगाह नीची थी। रानी का वह उत्कंठापूर्ण स्वर, रह-रहकर मन को कचोटता-सा था। वह निश्छल, निर्दोष, उमंगपूर्ण दृष्टिपात आंखों में अटक-सा गया था।

उन्होंने उसके चेहरे को अपनी हथेलियों पर ले लिया था। उसे ऊपर उठाकर, भीतर से उभरते हुए स्नेह को आंखों की राह निकालते हुए, वे उसकी आंखों की ओर देखते रहे। उसके माथे पर आवेग से तपता हुआ अपना गाल दबाकर उन्होंने धीरे से कहा था, "नहीं, नहीं, तुम जिस तरह रहती हो मुझे वैसा ही अच्छा लगता है। तुम जैसी हो,

मुझे वही चाहिए, तुम इसी तरह रहो, इसी तरह मुझे प्यार करती रहो।"

पर वह सत्ताईस साल पुरानी बात है।

न जाने किस विचित्र संयोग से यह साधारण-सी घटना उनके मन में रानी की बीमारी के समय भी अचानक आ गई थी। क्या हो रहा है, वे इसे सोच तक न पाए। उनकी आंखों में आंसू तक नहीं आया। एक ओर अकेले में बैठे हुए उन्होंने गंगाधर से कहा था, "गंगाधर, यह सब मेरी ही करनी है। उसे मैंने मार डाला।"

गंगाधर ने कोई उत्तर नहीं दिया। सिर झुकाए उन्हींके पास बैठा रहा। वे फिर बोले, "मैंने रानी को बुलाने के लिए चिट्ठियां भी लिखी थीं। मैं उसे जरूर ले आता। वह शायद मुझे माफ कर देती।"

गंगाधर ने धीरे से सर हिलाया था, जिससे ध्वनि निकलती थी, मैं जानता हूं।

वे स्नेह-स्मृतियां, बाद के रोमांचकर परिवर्तन, रानी का अपमान, शराबखोरी की उस रात का बलात्कार—उनके मन में सैकड़ों कांटेदार पांवोंवाले कनखजूरे-से रेंगने लगे। उनके सोचने की शक्ति मुरझा गई। वहीं खम्भ के सहारे माथा टेककर वे टिक गए। आंखें मुंद गईं।

गंगाधर ने तब भी कुछ नहीं कहा था!

प्रभा चारपाई पर चुपचाप लेटी हुई थी। नींद नहीं आ रही थी। आज की शाम वैसे तो रोज की सी ही शाम थी—कोई विशेष घटना नहीं हुई, रोज की ही भांति पापा दोस्तों के साथ पीते रहे, बात करते

रहे। जैसे कई बार ग्राम-गीत सुने जा चुके थे, वैसे ही आज भी सुने गए थे, रोज़ का सा ही शाम का खाना रहा, रोज़ की ही तरह वह सोने के लिए अपने परिचित बिस्तर पर आ गई है, पर मां की दुर्भाग्य-गाथा ने उस शाम को अचानक ही विषाक्त बना दिया था। वह बार-बार उस विषय से अपना मन दूर खींचना चाहती तो वह उसे शशिकान्त की लीलासंगिनी के रूप में न लाकर वसन्त की विवशता का गवाह बनाकर खड़ा कर जाता। दुर्भाग्य की एक लहर उसे अपने से दूर फेंकती भी तो उस विवशता की चट्टान पर जहां उसकी न्यायबुद्धि क्षत-विक्षत होकर चीत्कार करने लगती।

तभी रजनीकान्त के कमरे से कुछ ऐसी अमानवीय-सी आवाज़ें आने लगीं कि वह बिस्तर से उठ बैठी। उसने उन्हें कभी भी इस तरह का शब्द करते नहीं सुना था। दबे गले से वे कातर स्वर में कराह रहे थे। कान लगाकर उसने सुना, रुंधे गले से वे उसीको पुकार रहे थे। "प्रभा," केवल एक बार सुनाई दिया।

बिस्तर छोड़कर, पल-भर में वह कमरे से बाहर आ गई। नंगे पैर बरामदा पार करके वह रजनीकान्त के कमरे में पहुंची।

पेट्रोमैक्स की हवा छन चुकी थी। मेंटल धुंधली रोशनी के साथ ही साथ आग की लपटें भी निकाल रहा था। उसी धुंधलके में उसने देखा, रजनीकान्त बिस्तर पर पेट के बल पड़े हुए हैं। तकिया नीचे गिर गया है। सिर एक तरफ टेढ़ा होकर लटक गया है। हाथ ढीले होकर दोनों ओर असहाय-से पड़े हैं।

प्रभा ने चीखकर पुकारा, "पापा! पापा!"

पर उन्होने उसकी ओर देखने की कोई चेष्टा नहीं दिखाई। आंखें मूंदे ही मूंदे धीरे से बोले, "प्रभा, बेटी।"

वह पलंग के पास घुटने टेककर फर्श पर बैठ गई। उनके माथे पर

हाथ रखते ही वह चौंक पड़ी। माथा पसीने से भीग गया था। फिर उसने अनुभव किया, उनका सारा शरीर पसीने में लथपथ हो रहा है। घबराकर उसने पूछा, "क्या हुआ पापा ?"

वे एक क्षण तक चुप रहे, फिर कराहते हुए बोले, "मेरी छाती में दर्द हो रहा है बेटी ; जी बहुत घबरा रहा है। मेरे पास बैठो।"

प्रभा ने पूरी बात नहीं सुनी। गंगाधर के कमरे में पहुंचकर पुकारते हुए कहा, "अंकिल, अंकिल, देखिए, पापा को क्या हो रहा है !"

रजनीकांत ने करवट बदल ली थी। प्रभा ने फर्श से तकिया उठाकर उनके सर के नीचे रख दिया। नाइट शर्ट के बटन खुले हुए थे। छितरे हुए बालों से ढका हुआ माथा—एक अजब-से हास्यास्पद चेहरे पर गम्भीरता और चिन्ता की रेखाएं दिखाता हुआ गंगाधर उनके पास बैठ गया। उनकी नाड़ी को हाथ में लेकर संयत भाव से पूछा, "क्या हुआ ?"

वे बोले, "मैं एक मिनट के लिए बाहर चला गया था। पांवों में सिर्फ स्लिपर थे, तलवे ठंडक में सीझने लगे। अचानक मेरी छाती में दर्द उठा—एकदम से लकीर-सी खींचता हुआ, भीतर ही भीतर घुमड़ने लगा। जी घबराने लगा। मैंने समझा, मुझे सर्दी लग रही है। आकर पलंग पर पड़ रहा। पर तेज चाल से चलना मुश्किल मालूम देने लगा। घबराहट बढ़ती ही गई……।"

वे एक अस्वाभाविक व्यग्रता के साथ इतना कह गए और फिर अचानक ही चुप हो गए।

गंगाधर ने पास ही मेज़ पर रखी हुई रिस्टवाच एक हाथ में ले ली। दूसरे हाथ की उंगलियों से उनकी नाड़ी की गति देखते रहे। प्रभा पेट्रोमैक्स में हवा भरती रही। कुछ देर बाद कमरा प्रकाश से जगमगा उठा।

गंगाधर ने उनके हाथ को सहेजकर बिस्तर पर रख दिया और पूछा, "दर्द अब भी हो रहा है ?"

उन्होंने धीरे से सर हिलाकर कहा, "हां, पर ज्यादा नहीं है ।"

"अब घबराहट तो नहीं हो रही है ।"

बीमारों की सी आवाज़ में वे बोले, "नहीं, वैसी नहीं ।"

गंगाधर ने कुछ देर चुप रहकर कहा, "यहां कोई दवा देना तो सम्भव होगा नहीं, जरूरी भी नहीं है । तुम अच्छी तरह सो लो, यही दवा का काम करेगा । स्लीपिंग टैब्लेट्स तो हैं न ? एक खाकर सो जाओ ।"

प्रभा की मदद से गंगाधर ने रजनीकांत के पसीने से गीले कपड़े बदले । फिर उन्हें आराम से चारपाई पर लिटा दिया । उनपर लिहाफ़ डाल दिया और फिर पास की कुर्सी पर बैठकर उन्हें प्रोत्साहन देनेवाली आवाज़ में कहा, "कोई खास बात नहीं है आर० के०, तुम्हें सिर्फ आराम की जरूरत है ।"

पर उन्होंने पूछा, "पर यह था क्या गंगाधर ? ऐसा तो कभी नहीं हुआ ।"

गंगाधर थोड़ी देर तक उनकी ओर देखता रहा । कुछ सोचते हुए बोला, "लौटकर वापस चलो, तभी अच्छी तरह परीक्षा करके बता सकेंगे। हार्ट अटैक, मामूली-सा हार्ट अटैक ही जान पड़ता है ।"

प्रभा ने अपनी चारपाई उन्हींके कमरे में मंगवा ली थी। पलंग पर तकिये के सहारे वह चुपचाप बैठी हुई विनायक की बातें सुन रही थी। रजनीकांत करवट बदलकर उसीकी ओर देख रहे थे ।

विनायक उन्हींके सामने एक आरामकुर्सी पर बैठा हुआ था । हाथ में

ह्विस्की का अधभरा ग्लास था। एक घूंट पीकर उसने मुंह बनाया, फिर बोला, "गंगाधर की डायग्नोसिस बिलकुल ही गलत है, आर० के०। तुम जैसे मजबूत आदमी को दिल की बीमारी नहीं हो सकती। हो भी, तो घबराने की कोई बात नहीं, मत भूलो, तुम बड़े आदमी हो।"

प्रभा ने कहा, "अंकिल, आप जाकर सोते क्यों नहीं ? नींद के बारे में आप अपनी फिलासफी क्यों भूल रहे हैं ?"

"नहीं प्रभा, मैं जानता हूं, न तुम्हें नींद आ रही है न तुम्हारे पापा को ही। इसीलिए मैं यहां यह ग्लास खत्म करने के लिए रुका हूं, या यों कहो, यहां रुकना है इसलिए यह ग्लास खत्म कर रहा हूं। मुझे खुद नींद आ रही है, पर तुम लोगों की वजह से जग रहा हूं, नहीं तो, गंगाधर और जी० जी० की तरह मैं भी सोने चला गया होता।"

प्रभा मुस्कराकर चुप हो गई। वह कुर्सी से खड़ा हो गया और फिर उपदेश के ही लहजे में, किंतु अपेक्षाकृत धीमी आवाज़ में कहने लगा, "इन बातों से घबराना नहीं चाहिए। तुम्हारी उम्र अड़तालीस साल से ऊपर हो चुकी है। दुनिया तुमको जितना दे सकती थी, दे चुकी है। अब आगे जीने का सुख तो सरप्लस मुनाफे की बात है। जितना ले सकते हो, लेते जाओ और इस बात का शौक न करो कि तुम और ज्यादा क्यों नहीं ले पाते। देखो रजनी, मुझे देखो, मैं बयालीस साल का हूं। पर मुझे पचीस साल के बाद से ही लगने लगा था कि मैं अब बेमतलब जी रहा हूं। जानते हो क्यों ?"

वे थकी हुई मुद्रा में, पर हलकी मुस्कान द्वारा दिलचस्पी दिखाते हुए सुन रहे थे। किन्तु प्रभा ने चिढ़कर कहा, "अंकिल, अब आप जाइए। पापा को आराम करने दीजिए। आप उनकी हालत नहीं देख रहे हैं ?"

बड़े ही प्रसन्न भाव से एक किलकारी मारते हुए, जैसे इससे ज्यादा ऊंची उसकी कोई प्रशंसा हो ही नहीं सकती, विनायक ने प्रभा की ओर

देखा, फिर खुशामद-सी करते हुए कहा, "प्लीज़ प्रभा, इसी बात को खत्म करके मैं सोने चला जाऊंगा। और अपने पापा की फिक्र छोड़ो। गंगाधर कह गया है, ये बिलकुल ठीक हैं, अभी सो जाएंगे।" रजनीकांत की ओर देखकर, "तो जानते हो दोस्त, मैं क्यों ज़िन्दगी में थकान का अनुभव करता हूं ? इसीलिए कि पचीस साल तक पहुंचते-पहुंचते मैं जानने लायक सभी कुछ जान गया था, उसके बाद न कोई चीज़ प्रेरित करती है, न उत्तेजित। पहले पांचवें दर्जे से छठे दर्जे में पहुंचना, नई किताबें खरीदना, ये बातें भी जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना बन जाती हैं। नई जगहें देखना, त्यौहार मनाना, नये किस्म का खाना खाना—इन सबमें लगता है कि जीवन को एक नया अर्थ मिल रहा है। जब यूनिवर्सिटी की डिग्री लेकर मैंने फोटो खिचाई, जब मुझे नौकरी मिली, जब पहली बार तनख्वाह पाई, अपना कमाया रुपया अपने हाथ में रखा, और प्रभा माफ करना, जब पहली बार एनॉटमी आव् दि ऑपोज़िट सेक्स से परिचित हुआ—जीवन की ये छोटी-छोटी घटनाएं तब कितनी उत्तेजक, कितनी उत्प्रेरक जान पड़ती थीं ! क्यों न रजनीकांत, जब युवावस्था के पहले चरण में तुमने पहली बार मोटर ड्राइव की होगी, तब तुम्हें जो उत्तेजना और उल्लास मिला होगा, वह आज तुम हवाई जहाज़ चलाकर और सबमेरिन में बैठकर भी नहीं महसूस कर सकते।"

"अंकिल, हर नई बात अच्छी लगती ही है !"

"नहीं प्रभा, तुम बिलकुल गलत कहती हो, मैं किताब की बात नहीं कहता हूं। तजरबे की बात कह रहा हूं। तुमसे उम्र में लगभग दूना हूं। इसलिए बात को सुन लो और समझ लो।" एक सांस खींचकर विनायक ने ग्लास खाली कर दिया और फिर कहने लगा, "अपने नयेपन के कारण ही यह सब अच्छा लगा हो, ऐसा नहीं; यह पचीस साल से कम होने का नतीजा था। जब यौवन, अनुभवहीनता, शारीरिक क्षमता, मन की

उत्कंठा के सहारे हर पुरानी चीज़ भी नई जान पड़ती थी। और उसके बाद ? उसके बाद मैं बुड्ढा हो गया। समझदार हो गया। जो जानता हूं और भोगता हूं वह बदजायका मालूम होने लगा। जो नहीं जानता, जो नहीं समझता—उसके बारे में भी इतना समझ गया हूं कि उसे जानते ही उसे बदजायका बना दूंगा। बुद्धि के विकास की यही तो अलामत है कि बिना देखे हुए ही देखने के सुख की कल्पना कर लूं और उस कल्पना से ऊब जाऊं। पर ऐसी ज़िन्दगी जीने से क्या फायदा, जब सब अनुभव किसी पहले के अनुभव की खोखली नकल जान पड़ें, जब आगे आनेवाला दिन इस उमस-भरे आज की सिर्फ पुनरावृत्ति-सी मालूम पड़े, जब हम सिर्फ पिसे हुए आटे को पीसते रहें, रटी हुई बातों को दुहराते रहें, अपनी ही कै को खाते रहें ! दिस इज़ हॉरिबुल ! हॉरिबुल ! क्यों प्रभा ?

" इसीलिए मैंने एक थ्योरी निकाली है कि पचीस साल तक मैं शेर की तरह रहा, उसके बाद सुअर की तरह रह रहा हूं, और यदि मुझे हॉर्ट अटैक न हुआ तो अब म्युनिसिपैलिटी की कूड़ागाड़ी ढोनेवाले भैंसे की तरह रहूंगा। "

रजनीकांत ने कुछ कहने के लिए मुंह खोला, पर विनायक ने टोक-कर कहा, "नहीं, नहीं आर० के०, तुम कुछ मत बोलो। मैं तो योंही तुम लोगों के हंसाने के लिए यह सब बकवास दिखा रहा था, इसे भूल जाओ।"

" मैं तो ईश्वर से मनाता हूं—अहा ! मुझे ईश्वर याद आ गया ! गॉड बी थैंक्ड फार स्माल मरसीज़ !—तो मैं ईश्वर से मनाता हूं कि तुम सौ साल जिओ, और हर बरस में हों दिन पचास हज़ार, और अपने क़िस्से सुना-सुनाकर मुहल्ले के लड़कों के लिए मुसीबत बने रहो। गुडनाइट आर० के०, गुडनाइट प्रभा, आज के लिए इतना ही काफी है।

" मुझे अफसोस है कि तुम लोगों को मुसीबत में भी नहीं हंसा पा रहा

हूं। गुडनाइट !"

रोशनी कमरे के बाहर कर दी गई है। रात आधी से ऊपर बीत चुकी है।

"अब कैसी तबियत है पापा ?"

"अब ठीक है, सिर्फ थकान-सी है, नींद नहीं आ रही है।"

"दौरा यहीं से खत्म कर दीजिए। आपको बिलकुल आराम रहा तो हम कल ही यहां से वापस चल देंगे।"

"हां, गंगाधर भी तो यही कहता है।"

"कुछ महीने की छुट्टी लेकर आराम करना बहुत जरूरी होगा पापा।"

"वापस पहुंचते ही मैं ऐप्लीकेशन भेज दूंगा।"

"आपको आराम की सख्त जरूरत है, पापा।"

"......................।"

लगभग आध घण्टे की शांति।

"प्रभा !"

"जी !"

"तुम सोईं नहीं ?"

"...................।"

"मैंने तुम्हारी मां के बारे में अभी बहुत कुछ नहीं बताया। तुम सब कुछ जान लोगी तो मुझे घृणा करोगी।"

"पापा, तुम्हें कोई घृणा नहीं कर सकता।"

"...................।"

"पापा, मैं आपसे कैसे बताऊं...किसीका भी जीवन ऐसा नहीं जिसमें कुछ चुभन न हो। अंकिल विनायक, आपके मेरी-गो-लकी दोस्त—इनकी

थ्योरी नहीं सुनी आपने ? पचीस साल के बाद ही ये अपने-आपसे क्यों ऊब गए हैं ? उसकी जड़ में क्या है ? कौन जानता है ? सब अपना-अपना दुःख अपने-अपने कंधों पर ढोते हुए चलते हैं……।"

"…………………।"

"पापा, आपकी तबियत अब बिलकुल ठीक है न ?"

"हां प्रभा, मैं ठीक हूं । शायद मुझे भी नींद आ जाएगी ।"

कमरे के अधूरे प्रकाश में नींद आने के पहले की मानसिक कमजोरी में उन्हें लगा, राजेश्वर की यह पेंटिंग बढ़कर समूची दीवार पर फैल रही है । वह इतना फैल गई है कि पूरी दीवार उन पेड़ों के अंधकार में दबने लगी है । उनके चारों ओर के जंगल घने होते जा रहे हैं, धीरे-धीरे उनकी ओर बढ़ते आ रहे हैं । वे बिलकुल अकेले हैं ।

पर उन्हें उतना डर नहीं लगा, जितने का उन्हें डर था । शायद वे कुछ ऐसे ही दबाव के लिए बहुत दिनों से तैयार हो रहे थे । पर उनके मन में हलके बादलों की असंख्य पर्तें-सी फैलने लगीं ; एक अजीब-सी भयहीनता से घिरकर वे अपने-आपसे उलझते रहे । सोचते रहे :

तो यह भी शुरू हो गया है । इसीकी कमी थी ।

कभी ट्रेन से उतरते-उतरते, प्लेटफार्म पर कदम रखते ही वे छाती थामकर दुहरे हो जाएंगे । छड़ी और सर की फेल्ट कैप अपने-आप छिटककर दूर गिर जाएगी । स्टेशन पर स्वागत करने के लिए आए हुए मातहत त्रस्त और आतंकित निगाहों से एक-दूसरे को देखेंगे, उन्हें अपनी बांहों का सहारा देंगे ।

वायु-अनुकूलित ठंडे पानी की बैरेल, मसला हुआ अखबार, घड़ियाल के चमड़े की अटैची, बॉक्स में बंद व्हिस्की की बोतल, इंश्योरेंस कम्पनी

की चिट्ठियां, सुरुचिपूर्वक कढ़ा हुआ तकिये का गिलाफ, प्रभा का बुना हुआ मफलर, शशिकान्त का लाया हुआ शोख डिज़ायनवाला अमरीकी गाउन।

और छोटी-छोटी व्यवस्थाओं की धर्मान्धता के भाव से गुलामी—शेव के लिए हमेशा डिटाल मिला हुआ गरम पानी, आधी बांह की कमीज़ों से विरक्ति, जूते में रखे हुए मोज़ों से घृणा, नहाने के बाद तौलिये से पहले पैरों को पोंछना, नौकरों को इस तरह चलने का हुक्म कि उनके कंधों से पर्दे न छू जाएं, दफ्तर की मेज़ का हमेशा बरामदे में लगवाना, कमरे में लिखने-पढ़ने में उलझन, फूलों का गुलदस्ता सामने न रहे, हमेशा दाईं ओर के कोने में ही रहे। रोशनी बाईं ओर से आए। फर्नीचर और फर्श के कालीन पर धूल से शत्रुता, अजनबी पानी में महामारी के कीटाणुओं का भय।

काल से साक्षात्कार के उस महानिमेष में मोह के ये आधार, ये प्रवृत्तियां कितनी छोटी होकर दिखेंगी। बन में अचानक आग भड़क उठने पर किसी झुरमुट में दो पल्लवों को एक में जोड़नेवाले मकड़ी के जाले-सी, शरत्कालीन रौद्र की बर्बर प्रखरता के बीच अंधेरे में किसी किरण के सहारे लुढ़कते हुए त्रसरेणुओं-सी!

तो यह भी शुरू हो गया है।

अखबारों में, गज़ट में शोक-समाचार छपेंगे। पर सभी सोचेंगे—एक सफल जीवन! अपनी योग्यता के सहारे उन्होंने उन्नति की। उनकी बनाई हुई आधुनिकतम पद्धति की नहरें और बांध उनकी प्रतिभा की अमरता के प्रतीक है। विशाल कोठियां, मोटरें, प्राविडेंट फंड्स, कम्पनियों के हिस्से। सुरुचि-सम्पन्न, विदुषी कन्या, विधुरता का आदर्श बहिन। उनकी दानवीरता। सबसे सौजन्य का भाव। मित्रों में फूटनेवाला निश्छल हास्य। परिश्रम करने की अपार क्षमता। कर्तव्य के प्रति असीम उत्साह।

और उसीमें पाया हुआ ब्लड प्रेशर। आकस्मिक हार्ट अटैक—हार्ट फेल्योर। आदर्श जीवन! आदर्श मृत्यु।

कोई नहीं जानेगा कि रानी के सामने वे वेश बदलकर आते थे और वह अखबारों में छपनेवाले उनके इस स्वरूप को नहीं पहचानती थी। डॉ० सीता उनके किशोर-सुलभ स्वभाव, गैरजिम्मेदारी की बातों के ही जाल में निश्चेष्ट होकर खिंचती रही थी। वह इनके पतित्व से अपरिचित रही। कार्य-कुशलता में प्रकट होनेवाले इनके बर्फीले, गम्भीर व्यक्तित्व को नहीं जान पाई। प्रभा इनके उन दिनों को नहीं पहचान सकी, जब लंबे-लंबे अवकाश लेकर हिल-स्टेशनों के होटलों में वे महीनों पड़े रहते थे, दलालों, ऐंग्लोइण्डियन वेश्याओं, शराब की बोतलों, ताश की गड्डियों की ढेर में। उन्हें जैसा गंगाधर जान पाया, वैसा देवीदत्त नहीं जान सका। जिस तरह विनायक ने जाना, उस तरह इन दोनों ने नहीं जाना। जो कमजोर थे, उन्होंने इनकी शक्ति को सराहा। जो शक्तिवान थे, वे इनकी विनम्रता की सराहना करते रहे।

उनको किसने पहचाना?

किस पहचान के आधार पर अखबारों के ये शोक-समाचार, उनके चंदे से चलनेवाली संस्थाओं के उद्गार सार्थक माने जाएंगे?

क्या वे खुद अपने को पहचानते हैं? असंगतियों के, विपर्ययों के इस घने जंगल में, बुझते हुए सूरज की ऊपर ही ऊपर अटकी हुई किरणों के नीचे, धुंधलके में, झाड़ियों को तोड़ते-फोड़ते इस विकृत छायाकार को क्या वे खुद पहचान पा रहे हैं?

जो पहचान में आता उसे उन्होंने अज्ञातवास दे रखा है, और उनमें जो कुछ शेष बचा था, वह भी कई रूपों में अपने को अलग-अलग समेटकर इन्हीं तिमिरान्ध बनों में खो गया है। यही सब रूप, किसी अभिशाप की यंत्रणा से परिचालित होकर, परिस्थिति के अनुसार अपने-

आपको विकृत बनाकर एकांत में दुबके पड़े हैं। इनमें एक आकार रानी को छूता है, एक डॉ० सीता दत्त को। एक प्रभा को। जिस किसीने उन्हें पाया, वह उनके समूचेपन को नहीं छू पाया। पाया केवल शंका, भीरुता, वितृष्णा, लालसा के एक विकृत रूप को जो अपनी वास्तविकता के प्रकट होने की चिंता से आकुल होकर अपने-आपको किसी वन में छिपाए हुए था।

राजेश्वर की पेंटिंग एक बार फिर अपने फ्रेम से बाहर आकर सामने की दीवार पर फैल गई। बड़े-बड़े दैत्याकार काले, घने, पेड़। उनमें कोई खो गया है। वह कहां है, यह विश्लेषण करने की चेतना उनके थके दिमाग में शेष नहीं थी।

आज की शाम उन्होंने राजेश्वर से कहा था, "मैं इस चित्र की कीमत नहीं दे सकता।"

इस समय उनके मन में आया। हां, मैं इस चित्र की कीमत नहीं दे सकता। इसकी कीमत चुकाने के लिए ही मुझको आडम्बर की, दम्भ की, पश्चात्ताप की सुरंगों में निरन्तर भटकते रहना होगा। उम्र-भर इसी तस्वीर की जीवित व्याख्या बनकर जीते रहना होगा—ऐसी व्याख्या, जो कभी खुलकर अपने सामने तक न की जाए।

चांदनी के ऊपर अंधेरे का आक्रमण होनेवाला है। चांद पश्चिम की ओर पहुंच गया है, उसका पीलापन बढ़ता जाता है। तारों की चमक उभर रही है। हवा अपने में कुछ छिपाकर बहती है। पास के पेड़ों पर चमगादड़ उड़ते हैं और कें-कें करते हैं। गांव की ओर से गंड़ासों की कट्, कट्, कट्, की आवाजें आ रही हैं। लोगों ने इतनी रात से ही उठकर कुट्टी काटना शुरू कर दिया है। पास ही शायद नहर के किनारे-

किनारे कोई गाड़ीवान बैलों को चीख-चीखकर हांकता है। बैलों की डाट-फटकार के बीच-बीच कांपती आवाज़ में बिरहा गाता है। कहीं कोई चक्की पीस रही है। घर्र-घर्र की अस्पष्ट आवाज़ कान में पड़ती है। रुक-रुककर तीखे, ऊंचे, करुण स्वर में वह गा भी रही है। ग्रामगीत की वह कड़ी किन शब्दों को लेकर बनी है, वे नहीं जान पाते। केवल स्वर का उतार-चढ़ाव और खिंची हुई गूंज-भर बार-बार आकर कान से टकराती है।

कल्पना से वे उस स्वर में शब्द भरने लगते हैं, शब्दों में अर्थ भरना चाहते हैं, पर वह गीत जैसा भी हो, उनके लिए अर्थहीन स्वर होकर रह जाता है।

स्वर है, पर अर्थ उभर नहीं रहा है।

अपने उच्चतर व्यक्ति को अपने से दूर फेंककर उन्होंने क्या पाया?

हेमन्त की रात के तीसरे पहर उस करुण स्वर में ओस की सी छूकर देखी जानेवाली आर्द्रता थी। उसने चालीस साल पहले के उस वातावरण में उन्हें अनायास डाल दिया जब लोरियां उन्हें सुलाती थीं, और जगने पर मन्दिर के पुजारी बाबा की प्रभातियां और आसपास के घरों से आनेवाले जांत के गीत उनके कान में गूंजने लगते थे।

काल के प्रवाह में बहते हुए, किनारे के क्षण-क्षण पर बदलनेवाले दृश्य उनकी आंखों के सामने से निकल गए। गांव में ही रहकर अपनी सारी उपलब्धियों और असफलताओं से असंतुष्ट पिता की याद आई। अपने हलवाहे की याद आई, जो केवल डेढ़ बीघे खेत को जोतने का अधिकार पाकर उनके घर पर आजीवन गुलामी करता रहा। फिर उन्हें क्रम से अपनी व्यावहारिक उन्नति याद आई और उन्हें लगा कि जैसे उनका

हलवाहा साठ साल तक जीता रहा और उसके बाद मर गया, जैसे उनके पिता अपनी स्थिति के असंतोष का पूरा अनुभव किए बिना ही जीते रहे, वैसे ही वे स्वयं भी निरर्थक रूप से जीते रहे हैं। उनके जीवन में कोई प्रेरणा नहीं, कोई उद्देश्य नहीं, कोई चेतना नहीं, वे केवल इसीलिए जीते रहे हैं कि मरने से डर लगता है। जैसे उनके बचपन के सब साथी-संगी, परिचित, बड़े-बूढ़े जीवन के रीतेपन का निरर्थक बोझ ढोते रहे हैं, वैसे ही वे भी उन्हींके साथ हैं। उन्हींकी तरह रीते हैं; अन्दर से खोखले हैं। वे लोग जहां थे, उनके मुकाबले में वे एक इंच भी आगे नहीं बढ़ पाए हैं।

काल के प्रवाह में बढ़ते हुए, किनारे के भिन्न-भिन्न प्रकार के दृश्यों से उन्होंने निगाह फेर ली। उनमें कुछ भी विभिन्नता नहीं है। अपनी अहम्मन्यता की तुष्टि के लिए विद्या, बुद्धि, सुरुचि, कला आदि की ऊपरी सतह से खींच-खींचकर वे सब अपने ऊपर विशिष्टता का आरोप कर लेते हैं। पर उस ऊपरी मेक-अप के नीचे वे सब एक ही तरह छूंछे, उद्देश्यहीन, निरर्थक हैं। कुछ इस स्थिति को बिना जाने हुए ही रह जाते हैं। कुछ इसे जानकर भी दम्भ का सहारा ले लेते हैं और अपनी आदतों को सिद्धान्त का, अपनी उपलब्धियों को पुरुषार्थ का और अपनी असफलताओं को भाग्य का पर्याय बना लेते हैं। पर जब इस दम्भ में भी अपने को टिका रखने की ताकत न रहे तब क्या होगा?

उनके पास ऐसा क्या है जिसके सहारे वे कल सुबह किसीसे आंख मिलाकर कहें, "देखो, तुम इस प्रवाह में एक तिनके की तरह बह रहे हो, पर मैं तुम जैसा तिनका नहीं। मैं चट्टान हूं। मैंने इसे अपनी भुजाओं में भर लिया है, मैंने इसे बांध लिया है।"

थके हुए मन से उन्होंने अनुभव किया, रुई के गालों की तरह उष्णता की सुखद तरंगों जैसी नींद उनकी आंखों पर उतर रही है। स्तब्धता का सन्नाटा समान लय और स्वर में उन्हें चारों ओर से आविष्ट किए ले रहा है। चेतना के रहे-सहे कणों ने एक बार उस सन्नाटे को तोड़ना चाहा। उनके कंधे एक बार कांपे और आंखें खुल गईं। उनका मन हीनता की भावना से अकस्मात् आक्रांत हो गया। विकलता की बाढ़-सी उनके सीने में घुमड़-घुमड़कर उन्हें विनम्रता की ओर प्रेरित करने लगी। लगा, जिस-जिसके साथ उन्होंने अन्याय का, क्रूरता का प्रयोग किया है, उन सभीके सामने वे माथा झुकाए दंड लेने के लिए खड़े हुए हैं।

चांदनी अस्त हो रही थी। नींद में अपने को एकाकार करने के पहले उन्होंने व्याकुल होकर सोचा : रानी, तुम्हें सपनों ही में पा लूं तो एक बार तुमसे क्षमा की भीख मांगूं।

पर सपने सपने हैं। वे नींद की देन हैं। अदृष्ट की तरह वे भी अपने-आप बनते हैं, बिगड़ते हैं। सपनों के रूप पर उनका कोई बस नहीं। पर जिन-जिनपर उन्होंने अपने खंडित अपरूपों का बोझ डाला, आज की इस जागृति पर उनका दावा है। उसके माध्यम से उन्हें जो देना था, उसे वे अब तक न दे सके। यह अतीत की पराजय है। पर आगे प्रशस्त भविष्य है और यह तेजोमय जागृति है। वे देना चाहें तो उन्हें कौन रोक सकता है? रानी और बसन्त जैसी भाग्य की अनेक सौतेली संतानों के प्रति उसकी उदारता को कौन कुंठित कर सकता है? अपने अपरूपों को जगाकर, एकसाथ समेटकर, एक में मिलाकर वे उन्हें ममतापूर्वक स्वीकार करना चाहें तो उसमें कौन बाधा दे सकता है?

ओ निर्वासित बनवासियो, अपनी अज्ञात तमोमयी गुफाओं से लौट आओ। अपना विक्षोभ छोड़ो। यह पुराना घर एक नवीन तेजस्विता में